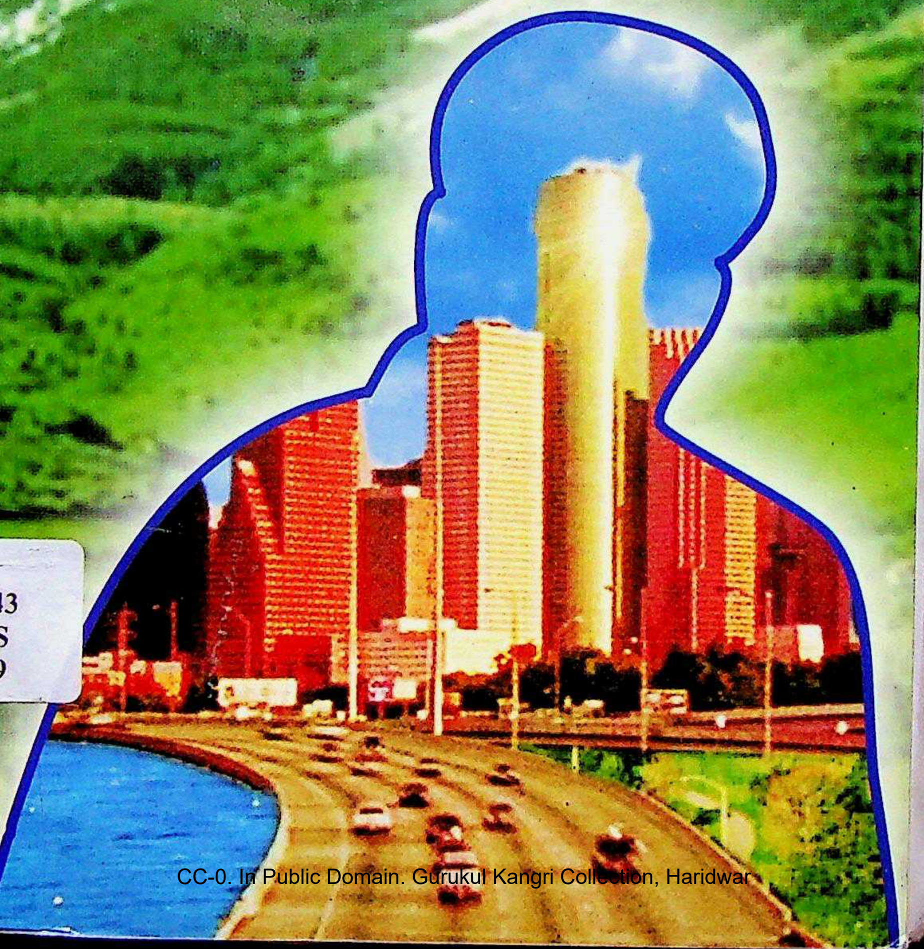
गुरुदत्त

सभ्यता की ओर...

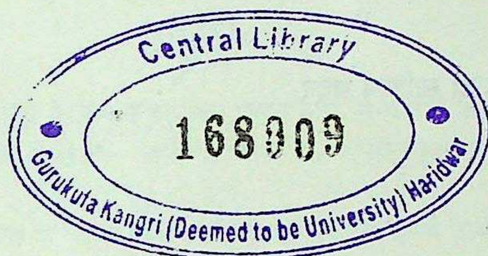


सभ्यता की ओर

"तुम इतने बड़े आदमी हो गए हो कि हम जंगली, जो न खाने का ढंग जानते हैं न पहनने का, तुम्हारे साथ जाकर तुमको लज्जित करना नहीं चाहते। तुम जाओ और सुख से अपना जीवन-यापन करो।"

"वे अपने को असभ्य समझते हैं? मैं इसके विपरीत ही समझ रही थी। हम नगर-निवासी धन और भोग-विलास के पीछे भागनेवाले उनसे कहीं अधिक असभ्य हैं। वे निर्धन कहे जा सकते हैं, असभ्य नहीं।"

सभ्यता की ओर



गुरुदत्त



हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-110 005

मूल्य : 80.00 रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता मार्ग
(समीप प्रह्लाद मार्केट) करोल बाग, नई दिल्ली-5
फोन : 3553624 ◆ फैक्स : 91-11-5412417
E-mail : indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2002

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स
दिल्ली-110032

भूमिका

हिंदी शब्दकोष में सभ्यता का अर्थ लिखा है.....'सभ्य होने का भाव' और सभ्य के अर्थ लिखे हैं—'सभा के योग्य, शिष्ट, सुसंस्कृत, नम्र एवं विश्वस्त।'

आज सभ्यता के व्यावहारिक अर्थ और ही बन गए हैं। वे अर्थ हैं—पक्के बढ़िया मकान में रहनेवाला, सफेद तथा स्वच्छ कपड़े पहननेवाला, मीठी-मीठी बातें करनेवाला, दूसरों की किसी भी बात का प्रतिवाद न करनेवाला, लड़ाई-झगड़े में शांति स्थापित करनेवाला, वैज्ञानिक उन्नति से लाभ उठानेवाला और नवीन वैज्ञानिक विचारों को स्वीकार करने का दावा करनेवाला।

इन अर्थों में बंबई में रहनेवाला मिलों का करोड़पति मालिक, एक उच्च पदाधिकारी, एक बातूनी वकील, अपनी अयोग्यता को छुपाने में सफल डॉक्टर इत्यादि सभ्य माने जाएँगे। एक नगर में रहनेवाला, इस विचार से एक देहाती से अधिक सभ्य समझा जाएगा तथा एक वनवासी, दूर पहाड़ की घाटी में अकेला रहनेवाला गड़रिया कम सभ्य समझा जाएगा। इसी कारण गड़रिए की सभ्यता से वनवासी की और वनवासी से ग्रामीण तथा उससे भी अधिक श्रेष्ठ एक नागरिक की सभ्यता समझी जाएगी।

एक यूरोपियन का जीवन-स्तर एक हिंदुस्तानी से उच्च माना जाता है, इसी कारण उसका जीवन अनुकरणीय समझा जाता है। आज हम ऊँचे-ऊँचे महल अथवा विशाल सड़कें बना, हवाई जहाज अथवा मोटरें रखकर अपने को उन्नति और सभ्यता की ओर ले जा रहे हैं। वास्तव में यह गति

सभ्यता की ओर नहीं है। जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, सभ्य और सभ्यता के ये अर्थ नहीं हैं। ये व्यावहारिक सभ्य और सभ्यता के अर्थ गलत हैं।

योग्य, शिष्ट, संस्कृत, विनयी और विश्वस्त व्यक्ति को ही सभ्य मानना चाहिए। पग-पग पर झूठ बोलनेवाला, धोखाधड़ी करनेवाला, अभिमानयुक्त तथा कुटिलता का व्यवहार करनेवाला, अपने से हीन को दु:ख देनेवाला, भले ही वह महलों में रहता हो, सभ्य नहीं माना जा सकता। और उस जैसा व्यवहार रखना, नगरों में रहना, मोटर और हवाई जहाजों में घूमते हुए बढ़िया वस्त्रादि पहनना सभ्यता नहीं मानी जाएगी।

यह पुस्तक इसी विषय पर, उक्त विचारों को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है। सभ्य और सभ्यता का मापदंड मन और व्यवहार की श्रेष्ठता है, न कि धन-संपदा-संपन्नता।

—गुरुदत्त

प्रथम परिच्छेद

[1]

प्रात: समीर चलती है तो दूर छिपे अज्ञात स्थानों पर भी जा पहुँचती है। न्यूनाधिक मात्रा में इसका प्रभाव सब पर होता है। भले ही कोई भाग्यहीन, दूर किसी गुफा के अँधियारे में पड़ा हो, वह भी प्रात: की समीर के प्रभाव से बच नहीं सकता।

भारत में भी प्रात: की एक सुखद् समीर चली। स्वराज्य मिला। एक सहस्र वर्ष की दासता की शृंखलाएँ टूटीं और भारत का मानव भी स्पंदित हो उठा। दो सहस्र मील लंबा-चौड़ा देश प्रसन्नता से देदीप्यमान हो गया। कलकत्ता और बंबई सदृश प्रमुख नगरों में तथा दिल्ली, लखनऊ, पटना, मद्रास इत्यादि राजनीतिक हलचल के केंद्रों में तो स्वराज्य मिलने की धूम थी ही, यह धूम राजस्थान की शुष्क मरुभूमि में बसे तीन-चार घरों के गाँवों तथा हिमाचल के दुर्गम मार्गों पर बनी गड़रियों की झोंपड़ियों में भी पहुँची। कैसे पहुँची और पहुँचने पर कैसी अनुभूति हुई, यह वर्णनातीत है। परंतु जब पहुँची तो एक नव-उमंग की तरंग को लिए हुए, मानव के लिए स्वर्ग का द्वार खोलती हुई, उसके सुख-स्वप्नों को साकार करने की आशा से भरी हुई।

जैसे बंदी की बेड़ियाँ खुलने पर प्रथम क्रिया जो उसके मन पर होती है, वह जकड़कर बाँधे हुए अंगों को फैलाता है, वैसे ही भारत में मानव ने साँस ली। उसने दीर्घ साँस ली और प्रभात के उस मलयानिल को अपने शरीर में भर लिया।

कुमाऊँ की पहाड़ियों में अल्मोड़ा से कैलाश के मार्ग पर, मार्ग से

भी एक ओर हटकर, गड़रियों का एक परिवार रहता था। वह परिवार वहाँ जाकर कब से रहने लगा और क्यों वहाँ गया, यह कोई नहीं जानता था। उस परिवार का प्रमुख व्यक्ति, जिसका नाम श्रीपाल था, बस इतना ही जानता था कि उसने अपने बाबा को इसी कुटिया में मरते देखा था। बाबा के पश्चात् दादी मरी। उसके पिता के तीन भाई और एक बहन थी। दो भाई परिवार छोड़ गए। एक तो इस पुरखा के होश सँभालने से पहले ही चला गया था और दूसरा एक गौरवर्णीय यात्री के साथ कैलाश को गया तो फिर लौटकर नहीं आया। पुरखों के पिता की बहन वहाँ से दस कोस के अंतर पर एक अन्य परिवार में दे दी गई थी और उसका पिता, उनके परिवार की एक लड़की को अपनी पत्नी बनाकर ले आया।

पुरखा के पिता के घर में एक लड़का और दो लड़कियाँ हुईं। एक लड़की की अदला-बदली तो एक अन्य परिवार की लड़की से हो गई। इस प्रकार उस पुरखा का विवाह हुआ और उसका परिवार चला। इसकी दूसरी बहन के बदले में किसी लड़की के लिए कोई लड़का नहीं था। लड़की बड़ी होने लगी और भाई की चिंता बढ़ने लगी। एक दिन एक पादरी, नीली-नीली आँखोंवाला, सुनहरी बाल, गोरा रंग, चाँदनी के समान श्वेत चोगा पहने और उस पर काला रस्सा कमर में बाँधे हुए, इस कुटिया के सामने से गुजरा और अविवाहित युवती को अकेली बैठी देख खड़ा हो गया।

लड़की का भाई भेड़ें और बकरियाँ इकट्ठी करने गया हुआ था। भाभी कुटिया के अंदर बैठी अपने नवजात शिशु को स्तन-पान करा रही थी। पादरी ने पूछा, ''लड़की, तुम्हारी शादी हो गई है ?''

इस प्रश्न को सुन लड़की का मुख लज्जा से लाल हो गया और पादरी समझ गया। इस स्थान पर इतनी बड़ी आयु की अविवाहित लड़की मिलनी प्राय: असंभव थी। पादरी लोग जानते थे कि जहाँ भी ऐसी लड़की होती है, वहाँ कुछ-न-कुछ विवशता कारणीभूत होती है। उस विवशता से लाभ उठा, प्रभु यीशु की भेड़ों की संख्या में वृद्धि के अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।

उसने कहा, ''चलो, हम तुम्हारा विवाह करा देंगे। प्रभु यीशु की शरण में आओ। वही तुम्हारी उँगली पकड़, तुमको भगवान् के द्वार पर ले जाकर खड़ा कर देगा।''

लड़की मुस्कराई और पादरी ने अपनी उँगली आगे कर दी, मानो किसी बालक को साथ ले जा रहा हो। लड़की अपने भाई का ऊनी सलूका ठीक कर रही थी। पादरी के कथन पर मनन कर वह अपने स्थान से उठी और बिना अपनी भाभी को आवाज दिए, उसके साथ चल पड़ी। भाभी भीतर बैठी कुटिया के बाहर इन दोनों में हो रहे वार्तालाप को सुन रही थी। उसे यह समझ में आ गया था कि मुन्नी अर्थात् उसकी ननद जा रही है। परंतु उसने रोका नहीं। वह मन में विचार करती थी, 'अच्छा हुआ, भाई का बोझ हल्का हुआ।'

भाई घर में आया तो पत्नी के मुख से बहन के चले जाने का वृत्तांत सुन उसकी आँखों से आँसुओं की दो बूँदें टपक पड़ीं। इस पर भी वह विचार करता था कि परमात्मा ने उसकी पुकार सुन ली।

यह पुरखा अब अस्सी वर्ष का बूढ़ा हो गया था। इसके भी संतानें हुईं। लड़के मैदानों में जीविकोपार्जन के लिए चले गए और लड़कियों का विवाह कर दिया गया। एकाध संतान रुग्ण होकर चिकित्सा के अभाव में काल की ग्रास भी हो गई। अब तो उसका एकमात्र पोता ही शेष था। पत्नी और अन्य सब प्राणी बिखर गए थे। वह बालक ही इस बूढ़े का एकमात्र आश्रय रह गया था।

उसके पास आधा बीघा भूमि थी, वह भी छोटे-छोटे टुकड़ों में। उस पर केवल धान और मक्का ही उपज सकती थी। बीस-बाईस भेड़ें और कुछ बकरियाँ थीं। बकरियों का माँस खाया जाता था, भेड़ों की ऊन के कपड़े बनते थे अथवा बेची जाती थी। मक्का और चावल खाने के काम आते थे। यह था उसका जीवन और यह सामान तीन-चार प्राणियों के लिए जीवन चलाने के लिए पर्याप्त था। जब भी प्राणी संख्या में बढ़ते थे, या तो वे किसी नगर की ओर चल पड़ते थे अथवा कोई रोग अपना

अस्वागतकारी हाथ बढ़ाकर, परिवार पर दया कर, उसका बोझ हलका कर जाता था।

बूढ़े की पतोहू, बालक सुंदर की माँ भी बीमार हुई और चल बसी। इससे तो बूढ़ा फूट-फूटकर रोया। अपने पुत्र के मरण पर उसको इतना दुःख नहीं हुआ था जितना पतोहू की मृत्यु पर। बूढ़ा मन में केवल एक आशा लिए कि सुंदर बड़ा होगा, घर में बहू लाएगा और परिवार चलाएगा, स्वयं जीवित रहा।

माँ की मृत्यु के समय सुंदर तीन वर्ष का था। बूढ़े की लड़की उसके स्थान से बीस कोस के अंतर पर विवाह दी गई थी। जब से उसका विवाह हुआ था, वह अपने बाप से मिलने नहीं आ सकी थी। अब एक दिन वह और उसका पति आए। उनके कोई संतान नहीं थी। दामाद ने सेना में नाम लिखा दिया था और अपनी पत्नी को उसके बाप के घर छोड़, सेना में जाने के लिए यहाँ आया था।

जर्मनी का द्वितीय युद्ध आरंभ हो चुका था। रूस और जर्मनी में फूट पड़ चुकी थी। जापान ने अमेरिका पर आक्रमण कर दिया था और साथ ही वह मलाया और बर्मा के मार्ग से भारत की ओर बढ़ने का विचार रखता था। इस विपत्ति के समय भारत सरकार ने फौजी भरती तेज कर दी थी। सरकार के भरती करनेवाले अफसर गाँव-गाँव घूम कर रिक्रूट एकत्रित कर रहे थे।

सुंदर के फूफा सुमेर ने भी सेना में नाम लिखा दिया था। जब उसको आज्ञा हुई कि वह रानीखेत में अमुक तिथि को उपस्थित हो जाए, तो वह अपनी पत्नी को उसके पिता के घर छोड़ने चला आया।

बूढ़े ने तो उससे कुछ विशेष बात पूछी नहीं। उसको अपनी लड़की के घर आ जाने से न किसी प्रकार का हर्ष हुआ और न शोक ही। वह जानता था कि लड़की खेत पर काम करेगी तो कुछ पैदा कर ही लेगी। इससे उसका भी निर्वाह होगा और भतीजे का पालन भी। स्वयं को तो बूढ़ा अब कुछ ही दिन का मेहमान समझता था।

सुंदर ने तो अपने फूफा से प्रश्नों की झड़ी ही लगा दी। उसने पूछना आरंभ किया—"कहाँ जा रहे हो, फूफा?"

"फौज में।"

"वह क्या होती है?"

"बहुत से आदमी इकट्ठे होकर जब लड़ने के लिए तैयार होते हैं, उसे फौज कहते हैं?"

"ये क्यों लड़ते हैं?"

"जब कोई बदमाश लोगों को तंग करता है तो उसको मारने के लिए लड़ना पड़ता है?"

"तो बदमाश बहुत बलशाली होता है, उससे लड़ने के लिए बहुत से लोगों को लड़ना पड़ता है?"

"हाँ।"

"वह कौन बदमाश है, जिससे तुम लड़ने जा रहे हो?"

"जर्मनी का राजा हिटलर है। वह बहुत बलशाली है।"

"फूफा! जाओ, उसको मारकर उसका सिर मेरे लिए ले आना।"

"सिर ले आऊँ?"

"हाँ, बाबा एक दिन बता रहे थे कि एक सूर्पणखा थी और एक लक्ष्मण था, जिसने उसके नाक-कान काट लिए थे। बाबा कहते थे कि यदि लक्ष्मण उसका सिर काट लेता तो फिर न रावण को पता चलता, न वह सीताहरण करता, न युद्ध होता। इसलिए फूफा! तुम उसका, क्या नाम बताया था, तुमने उसका? कुछ भी हो, सिर काटकर ले आना।"

सुमेर यह सुन हँस पड़ा।

[2]

सुमेर जिस समय सेना में भरती होकर रानीखेत के लिए गया था, सुंदर उस समय पाँच वर्ष की आयु का था। पाँच वर्ष के पश्चात् जब वह लौटा, तब तक सुंदर दस वर्ष का हो चुका था। उसकी फूफी न केवल

भेड़-बकरियों का काम करती थी, प्रत्युत् अपने सबके खाने के लिए मक्का, चावल आदि भी उत्पन्न कर लेती थी। बूढ़ा भी कुछ करता रहता था। सुंदर तो फूफी का सहायक, पुत्र और सब-कुछ था। सुंदर को भी जब माँ का वात्सल्य फूफी से प्राप्त हुआ, तो वह प्रसन्न हो गया।

जब सुमेर लौटा तो बूढ़ा मरणासन्न पड़ा था। वहाँ बीस-बीस कोस तक कोई डॉक्टर, हकीम, वैद्य नहीं था। केवल एक पादरी वर्ष में दो बार आया करता था और भगवान् के पुत्र यीशुमसीह की सुरक्षा प्रदान कर जाता था।

बूढ़ा इस अवस्था में ज्वरग्रस्त हुआ तो सुंदर की फूफी ने उसी पादरी की दी हुई कुनीन की गोलियाँ अपने पिता को खिला दीं।

सुमेर के लौटने पर उसकी पत्नी और सुंदर को बहुत प्रसन्नता हुई, परंतु घर में मृत्यु के लक्षणों से उनके मुख की चिंता नहीं मिट सकी। कुनीन देने से बूढ़े की अवस्था सुधरने की अपेक्षा बिगड़ी ही थी।

सुमेर कुटिया में पहुँच बाबा को पुकारने लगा, परंतु वह अचेत पड़ा था। अब तो वह एकाध घड़ी का ही मेहमान रह गया था। धैर्य से मृत्यु की प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया था।

तीन दिन तक अचेत रहकर वृद्ध ने प्राण छोड़े। सुमेर ने अपनी पत्नी की राय से वहीं, अपने श्वसुर के घर में रह जाने का निश्चय किया। वहाँ बकरियाँ थीं, भेड़ें थीं और कुछ भूमि थी। साथ ही सुंदर जैसा कुमार, पुत्र के समान था।

परंतु सुंदर जब सुमेर से युद्ध की और फिर भारत में हो रहे आंदोलनों की बातें सुनता था, तो उसको यह कुटिया, खेत और भेड़-बकरियाँ नीरस प्रतीत होने लगती थीं। वह मन में वहाँ से भाग, उस विशाल संसार में जाकर विचरण करने का विचार करता था।

एक दिन सुमेर ने सुनाया, ''एक थे सुभाष बाबू। हमारी पूरी-की-पूरी रेजीमेंट जापान की कैदी हो गई थी। वे आए और कहने लगे, 'भाइयो! हिंदुस्तान को स्वतंत्र कराना है। बताओ कौन सिपाही इस काम के

लिए मेरे साथ आता है ?' हम सबने राय की और भारत की स्वतंत्र सेना में भरती हो गए। इम्फाल में एक लड़ाई लड़ी और भारत की सरकारी सेना को मार-मारकर भगा दिया। फिर कुछ नहीं हुआ। जापान ने हमारी सहायता नहीं की। हम वापस लौट आए। एक दिन हम अंग्रेजी सरकार के कैदी हो गए। जापान और जर्मनी दोनों हार गए। हमको कैद कर भारत में लाया गया। अंग्रेजी सरकार ने हम सबको गोली से उड़ा देने का आदेश दे दिया। परंतु पंडित जवाहरलाल नेहरू और देश के अन्य लोगों ने आंदोलन किया और हम छूट गए।''

''आंदोलन किया ? वह क्या होता है फूफा ?''

''वह एक तरह का दाँव-पेच होता है। पंडित जवाहरलाल ने दाँव चलाया और हम छूट गए।''

दस वर्ष का बालक, सभ्यता नाम की वस्तु से कोसों दूर, केवल भले-बुरे का नैसर्गिक ज्ञान रखता हुआ, सभ्य समाज की इन बातों को सुनकर चकित रह गया। वह कभी मन में विचार करता था कि यदि फिर कोई हिटलर जैसा बदमाश पैदा हो, भले लोगों को तंग करे, भले लोग फिर युद्ध के लिए सेना में भरती हों तो वह अवश्य युद्ध में जाएगा और ऐसे सुंदर-सुंदर स्थान देखेगा, जैसे उसके फूफा ने देखे हैं। वह शौर्य के ऐसे कार्य करेगा, जैसे सेनानायक सुभाष बाबू ने किए हैं।

न जाने वह कब तक युद्ध होने और उसके लिए स्वयं सेना में भरती होने की प्रतीक्षा करता रहता, परंतु उससे पहले ही उसको उस संसार में जाने का अवसर मिल गया। एक दिन कैलाश को जानेवाले मार्ग से कुछ लोग घाटी में उतरते दिखाई दिए। वे सब एक बाजा बजाते और गाते हुए आ रहे थे। वे गीत उसकी अपनी पहाड़ी भाषा में ही गाए जा रहे थे।

उनके बाजे और गाने की आवाज सुन सुंदर, जो उस समय खेत को निराने में संलग्न था, खड़ा हो उनकी ओर देखने लगा। वे आए तो उसके खेत के किनारे बैठ गए और गाने लगे। वे जो गा रहे थे, उसका अर्थ कुछ इस प्रकार था—

''प्रभु यीशुमसीह निर्धन, दुखिया, बीमार और अज्ञान के अंधकार में फँसे लोगों को मुक्ति दिलाने के लिए संसार में आए थे। आओ, समय न गँवाओ। जीवन छोटा है, पीछे पछताना पड़ेगा।''

सुंदर की फूफी ने खेत से भुट्टे तोड़कर, वहीं पर आग जला, उनको भूना और उन सबको खाने के लिए दे दिए। जब सुंदर की फूफी भुट्टे भून रही थी, उस समय उस भजन मंडली का नेता सुंदर से बातें कर रहा था। सुंदर ने कहा, ''तुम्हारा बाजा बहुत मीठा लगता है।''

''हाँ, उसमें गीत तो उससे भी मीठा है।''

''यह यीशु कौन है?''

''वह परमात्मा का पुत्र था। वह इस दुनिया में सबके दुःख-हरण के लिए आया था। जो उसकी शरण में जाता है, वह उसको धन देता है, वस्तु देता है, मकान देता है और फिर अंत में स्वर्ग का द्वार उसके लिए खोल देता है।''

''बहुत अच्छा आदमी है वह!''

''हाँ, उसकी शरण में आओ तो सब-कुछ मिलेगा।''

''मिठाई भी मिलेगी?''

''हाँ, जो चाहो।''

''मैं उसकी शरण में आना चाहता हूँ।''

''तो ऐसा करो, रात को ऊपर उस बड़े मार्ग पर पहुँचकर, दाहिने हाथ को चल पड़ना। चौथाई कोस चलने पर हमारा कैम्प मिलेगा। वहाँ कल प्रातःकाल तक आ जाना। बस वहाँ आकर तुम भगवान् के आश्रय में आ जाओगे। तत्पश्चात् तुम्हारी देख-भाल करना प्रभु का काम होगा।''

सुंदर के मन में बात बैठ गई। रात्रि में वह उठा और चाँदनी के प्रकाश में चलता हुआ, प्रभु यीशुमसीह के गल्ले मे एक भेड़ बन, सम्मिलित हो गया।

उसके वहाँ पहुँचते ही एक विशेष साथी के साथ उसको अल्मोड़ा भेज दिया गया। अगले दिन सुमेर और उसकी पत्नी ने जब सुंदर को

लापता पाया तो वे भागते हुए उन मिशनरियों के कैम्प में गए। परंतु उनके वहाँ पहुँचने से पूर्व ही कैम्प कैलाश की ओर जा चुका था। निराश दोनों वापस अपनी कुटिया में चले गए।

पाँच दिन की पैदल यात्रा करके सुंदर और उसका साथी अल्मोड़ा पहुँचे। सुंदर को स्नान कराया गया। उसके बाल बनवाए गए और साफ-सुथरे कपड़े पहनने को दिए गए। तत्पश्चात् उसको पढ़ने के लिए सेंट जोसफ स्कूल में भरती करा दिया गया।

वह स्कूल की पहली श्रेणी में पढ़ने लगा। उसकी क्लास में अधिकांश बच्चे चार-चार, पाँच-पाँच वर्ष के थे। सुंदर को भूलें करते देखकर वे उसकी खिल्ली उड़ाया करते थे। इससे सुंदर को लज्जा भी लगती थी और क्रोध भी आता था।

पढ़ानेवाली एक स्त्री थी। उसका नाम था वासंती पाल। वह श्रीयुत पाल की धर्मपत्नी थी। पाल गिरजाघर में 'ऑरगन' बजाने का कार्य करता था और स्कूल में बच्चों को गाना भी सिखाता था।

पाल की पत्नी सुंदर को बहुत प्यार करती थी। पहले ही दिन जब सुंदर स्कूल में आया तो मिसेज पाल उसको देख अति प्रभावित हुई थी। जाँच करने पर उसको विदित हुआ कि प्रचार-कार्य के लिए उत्तर की ओर गई मंडली इस लड़के को लाई है। जब सुंदर को उसकी श्रेणी में भरती कराया गया तो वह बहुत प्रसन्न हुई। परंतु यह देखकर कि वह अक्षर तक नहीं पहचानता, उसने उसको अपने घर पर बुलाकर विशेष शिक्षा देनी आरंभ कर दी। सुंदर आयु में ग्यारह वर्ष का मेधावी बालक था और द्रुत गति से उन्नति करने लगा था। परंतु जब तक वह अपनी आयु के बच्चों जितना पढ़ नहीं गया, उसकी खिल्ली उड़ाई ही जाती रही।

| 3 |

सुंदर को इस प्रकार उन्नति करते देख श्रीमती पाल को अपना बाल्यकाल स्मरण आने लगा था। वह, अल्मोड़ा से दस मील के अंतर पर,

उत्तर की ओर एक छोटे-से गाँव की लड़की थी। अभी छः वर्ष की थी कि उसके माता-पिता का देहांत हो गया था। गाँव की एक स्त्री ने उस पर दया कर अपने घर में रख लिया था, परंतु उस स्त्री का घरवाला उसके इस दयापूर्ण कार्य से प्रसन्न प्रतीत नहीं होता था। जब वह स्त्री उसे खाने को कुछ देती तो वह कह देता, "सब इसी को दे दोगी तो अपने बच्चों को क्या दोगी ?"

एक-दो बार स्त्री ने दबी जबान से कहा भी था, "अपने बच्चे अभी छोटे हैं। वे तो बहुत खा नहीं सकते। यह भी तो जरा-सा ही खाती है।"

"तो पहले उनका पेट भर लो, फिर इस चटोरी को खिला देना।"

एक दिन पति और पत्नी में घर के भीतर के कमरे में वासंती के विषय में झगड़ा हो गया। बच्चे बाहर सो रहे थे। उस दंपती के दो बच्चे थे। वे दोनों वासंती से छोटे थे। दोनों गहरी नींद सो रहे थे और वासंती को अपना नाम बार-बार कहा जाता सुनाई दिया तो वह सतर्क हो सुनने लगी। पुरुष कह रहा था, "देखो, तुमने घर में एक मुख और रखकर अच्छा नहीं किया। यहाँ अपने खाने को नहीं मिलता और ऊपर से यह बला पाल ली है।"

स्त्री का कहना था, "पर इसका कोई है नहीं। कहाँ फेंक दूँ इसे ?"

"तो हम क्या करें ?"

"पर हमारे घर में तो कमी नहीं है। इसको खिलाने के उपरांत भी बाजार में बेचने के लिए पर्याप्त बच जाएगा।"

"क्या खाक बचेगा? पिछले वर्ष नगर में जाकर पचास रुपए ले आया था। उन पचास रुपयों में से दस तो जमीन का ही देना पड़ा। शेष चालीस रुपयों से मुश्किल से वर्ष-भर के लिए कपड़ों का प्रबंध हो सका है। इस वर्ष इतना भी बच नहीं सकेगा।"

"यह ठीक है। परंतु परमात्मा देखता है कि किसी अनाथ की सहायता में ही यह हो रहा है। इस कारण वह कोई और साधन पैदा कर देगा।"

"मैं तो कल इसे धक्के दे-देकर घर से निकाल दूँगा।"

''नहीं जी। यह ठीक नहीं होगा।''

वासंती सुनी बात को समझ रही थी, परंतु वह भयभीत थी। इस कारण उसे नींद नहीं आ रही थी। स्त्री तो यह कह कि यह ठीक नहीं होगा, चुप कर रही। परन्तु पुरुष अपने-आप कहता रहा, ''इस छोकरी ने मेरा सब काम खराब कर दिया है। इसको मैं यहाँ अब रहने नहीं दूँगा।''

इस प्रकार पुरुष बुड़बुड़ाता रहा। स्त्री के उत्तर न देने से वह भी चुप कर गया। वासंती बहुत देर से सोई थी और सूर्य निकल आने पर भी सो रही थी। उसकी जाग खुली, जब वह पुरुष उसकी बाँह पकड़ कंबल से बाहर उसे घसीट रहा था।

उसे रात की बात स्मरण हो आई। पुरुष ने उसको धकेलते हुए घर से निकाल दिया। स्त्री द्वार पर बैठी थी। जब वासंती को वह पुरुष धकेलकर घर से निकाल रहा था तो वह विह्वल हो रो रही थी।

वासंती की आँखों में आँसू नहीं थे। वह तो डरी हुई थी और विचार कर रही थी कि उसे ले जाकर वह किसी खड्ड में न धकेल दे।

वासंती की जान-में-जान आई, जब उस पुरुष ने उसे घर से बाहर कर उसे छोड़ा और फिर अपनी पत्नी की बाँह पकड़कर घर में घसीट ले गया और मकान का द्वार बंद कर दिया।

अब वासंती को अपनी निस्सहाय अवस्था का ज्ञान होने लगा। वह कितनी ही देर तक मकान की ओर देखती हुई खड़ी रही। परंतु द्वार नहीं खुला।

अब वह वहाँ से टल गई। मकान के बाहर एक अहाता था। उसमें उस पुरुष की बकरियाँ बँधी रहती थीं। वासंती का यह नित्य का काम था कि वह बकरियों को खोल खड्डे में जल पिलाने ले जाया करती थी और उसी समय वह स्वयं भी शौचादि हो लिया करती थी। आज भी वह अहाते में गई और बकरियों को निकाल खड्डेवाले नाले की ओर चल पड़ी। वह नाले पर पहुँची तो बकरियाँ मैं-मैं करती हुईं जल पीने लगीं।

जब वह स्वयं शौचादि से निवृत्त हो हाथ-मुख धो घर का लौटी तो

नित्य की भाँति उसे भूख लग आई थी। नित्य उसके आने पर वह स्त्री उसके लिए कलेवा तैयार रखती थी, परंतु आज मकान का द्वार नहीं खुला।

वह द्वार पर बैठ गई। बकरियाँ तबेले में चली गईं और वहाँ एकत्रित किए पत्ते चबाने लगीं।

सूर्य पहाड़ों की चोटियों से ऊपर दिखाई देने लगा था, परंतु आज घर का द्वार नहीं खुला। इतने में एक गौरवर्णीय वृद्ध वहाँ से गुजरा। उसकी दाढ़ी श्वेत थी और वह श्वेत वस्त्र पहने हुए था। वासंती लालसा-भरी दृष्टि में उसकी ओर देखने लगी। वह गोरा अल्मोड़ा के गिरजाघर का पादरी था, जो सेंट जोसफ स्कूल के साथ संबंधित था। यह तो उसे पीछे पता चला था, परंतु उस समय वह मन में विचार कर रही थी कि उससे कुछ खाने के लिए माँग ले। कदाचित् उसके चोगे की जेब में कुछ खाने को रखा हो।

इस पर भी वह एक अपरिचित से कुछ माँग नहीं सकी। वह पादरी चलता-चलता लड़की को अकेले बैठे देख रुक गया। वासंती के मन में आया कि वह उठकर भाग जाए। परंतु कहाँ? मकान का द्वार खुला होता तो मकान के भीतर चली जाती।

एकाएक उस पादरी ने पूछ लिया, ''लड़की, यहाँ बैठी क्या कर रही हो?''

उसके मुख से निकल गया, ''भूख लगी है। मौसी····।''

''तो अभी तक कुछ खाया नहीं? अब तो बहुत दिन चढ़ गया है।''

''मौसी ने घर से निकाल दिया है।''

''क्यों?''

वासंती कुछ उत्तर नहीं दे सकी। इस पर उस पादरी ने कहा, ''आओ मेरे साथ। तुमको खाने को दूँगा।'' इतना कह उसने अँगुली पकड़ने के लिए बढ़ा दी।

वासंती ने अँगुली पकड़ी और चल पड़ी। पादरी ने जेब से मीठी लेमन ड्रॉप्स निकालकर उसको देते हुए कहा, ''इनको चूसो। मैं तुमको

प्रभु के घर ले चलता हूँ। वहाँ कोई भूखा नहीं रह सकता।''

ऊपर चलते हुए वे बड़ी सड़क पर जा पहुँचे। कुछ दूर पर एक खुले स्थान पर एक खेमा लगा था, जिसमें दो-तीन युवक बैठे थे। वृद्ध पादरी ने कहा, ''यह प्रभु यीशु की एक और भेड़ मिल गई है। इसे कुछ खाने को दो।''

उन लोगों ने वासंती को बिस्कुट और डबल रोटी के टुकड़े मुरब्बे के साथ खाने को दिए। वासंती को बहुत स्वाद लगा।

उसी दिन वह उनके साथ अल्मोड़ा सेंट जोसफ स्कूल के यतीमखाने में पहुँचा दी गई।

अपनी इस कथा को स्मरण कर एक सायंकाल सुंदर से उसने पूछा, ''तुम्हारे माता-पिता हैं?''

''नहीं मदर!'' सब लड़के उसे मदर कहते थे। सुंदर भी अर्थ न समझता हुआ उसे मदर कहने लगा था।

''तो तुम भी भूखे घर से निकाल दिए गए थे?''

''नहीं, मदर! मेरे बुआ और फूफा थे। मैं दुनिया देखने के लिए चला आया हूँ।''

''तुम्हारे घर में और कौन है?''

''बस मैं था और फूफा-फूफी थे।''

''तुम वापस जाना चाहते हो?''

''हाँ। मगर वहाँ पढ़ाई नहीं हो सकती।''

मिसेज पाल चुप रही। उसकी अपनी कथा से सुंदर की कथा कुछ ही विलक्षण थी। वह भी कुछ दिन यतीमखाने में रहने के उपरांत घर जाना नहीं चाहती थी और यह भी नहीं जाना चाहता था।

[4]

सुंदर स्कूल की कमेटी के अधीनस्थ अनाथालय में रखा गया था। वहाँ पर सभी बच्चों को कठोर नियंत्रण में रखा जाता था। अनाथालय की

मैट्रन प्रौढ़ावस्था की एक स्त्री वेणी स्मिथ थी। वह बच्चों को समय पर उठने, समय पर स्नानादि से छुट्टी पा, खाना खाने और स्कूल जाने, फिर स्कूल का काम करने तथा रात को सोने पर विवश करती थी। सदा हाथ में बेंत लिए घूमा करती थी और उस बेंत का वह बेखटके प्रयोग भी करती थी।

मिसेज़ पाल सुंदर को पृथक् बेंच पर बैठाती और पढ़ाई के कमरे में उसको अपना पाठ चुपचाप स्मरण करने अथवा लिखने का काम करने के लिए छुट्टी दे देती थी। सुंदर अपनी श्रेणी के बच्चों से आगे निकल गया था। इस पर भी वह अपनी आयु के बच्चों से, जो छठी श्रेणी में पढ़ते थे, बहुत पीछे था।

अनाथालय में कपड़े, बिस्तर, खाना और फिर बीसियों ही लड़कों की संगत उसके अपने घर से विलक्षण थी। घर में तो दिन-रात चावल, मक्की, आलू और दाल के अतिरिक्त कुछ भी खाने को नहीं मिलता था। वहाँ पर उसके अपने सिवाय अन्य कोई बच्चा भी नहीं था। यहाँ चाय, मक्खन, टोस्ट, अंडा, रोटी, दाल, भाजी, मांस-मछली इत्यादि खाने को मिलते थे। नित्य नई वस्तु मिलती थी। दूध समान श्वेत बिस्तर की चादर, रजाई, कंबल इत्यादि होते थे। पहनने के कपड़े यद्यपि खाकी रंग के थे, परंतु सप्ताह में दो बार धोबी से धुले हुए मिलते थे। यह सब-कुछ बहुत ही सुखकारक था।

इस पर भी वह मन में कभी-कभी एक अज्ञात चंचलता का अनुभव करता था। उसको कुछ ऐसा अनुभव होता था कि उसकी कोई वस्तु खो गई है। वह मन में विचार करता था कि वह क्या है, परंतु वह समझ नहीं सका था कि वह क्या वस्तु है, जो उसको घर में प्राप्त थी और यहाँ पर नहीं है।

कई दिन तक विचार करने पर भी वह समझ नहीं सका। धीरे-धीरे उसके हृदय में यह बात धँसती जा रही थी कि हर प्रकार के शारीरिक सुख प्राप्त होने पर भी वह बेचैन है।

पहले तो उसने समझा कि अपनी बुआ और फूफा से दूर होने के कारण वह उदास है। परंतु मिसेज़ पाल का व्यवहार तो उसको अपनी बुआ से भी अधिक सहृदयता से परिपूर्ण प्रतीत होता था। यद्यपि मिस्टर पाल उसको सदैव उपेक्षा से देखता था और उसकी ओर देखते हुए कभी मुस्कराता तक नहीं था, परंतु मिसेज़ पाल उसको देख सदा मुस्कराती रहती थी और सिर तथा पीठ पर हाथ फेरकर प्यार करती रहती थी।

घर पर तो उसकी आदत थी कि वह रात को देर तक जागता रहता था। आकाश के तारों अथवा चाँदनी रात में चाँद को देख, मन में कल्पना के घोड़े दौड़ाया करता था। उसके बाबा ने बताया था कि ये चाँद, तारे और सूर्य देवता हैं, जो घूम-घूमकर मनुष्यों को देखते रहते हैं और उनके अच्छे अथवा बुरे कर्मों का फल देते हैं।

यहाँ उसको कभी आकाश की ओर देखने का अवसर ही नहीं मिलता था। सायं चार बजे स्कूल से मिसेज़ पाल के घर जाना होता था। उसके घर चाय पी, उससे पढ़ना होता था। रात को आठ बजे वह अनाथालय में पहुँच जाता था। वहाँ भोजन के पश्चात् पढ़ाई कर, दस बजे बिस्तर में चला जाना होता था। नींद आए अथवा नहीं, सब बच्चों को उस समय बिस्तर में चला जाना ही पड़ता था। इस कारण वह भी लेट जाता था। कभी-कभी तो वह बारह-एक बजे तक बिस्तर पर करवटें लेता रहता था। बिस्तर उसको काटता-सा प्रतीत होता था। परंतु मिसेज़ स्मिथ को हाथ में बेंत लिए घूमते देख, उसका साहस नहीं होता था कि सिरहाने से सिर भी ऊँचा कर सके। उसने अपने साथियों में से कई लड़कों को पिटते हुए देखा था।

चाँदनी रात में तो वह 'बोर्डिंग हाउस' के सोने के कमरे से निकल बाहर खुले मैदान में बैठने के लिए लालायित रहता था। एक दिन उससे नहीं रहा गया। वह आधी रात के समय बिस्तर से निकला और अपना ऊनी कोट पहन कमरे से बाहर निकल गया। उसे किसी ने देखा नहीं। वह इमारत के बाहर खेलने के मैदान में आ एक पत्थर पर बैठ गया और

छिटकी चाँदनी में मैदान, पेड़ों और मकान को देख संतोष अनुभव करने लगा। दृश्य उतना लुभायमान तो नहीं था जितना कि उसके अपने झोंपड़े के बाहर से होता था। इस पर भी पिछले एक वर्ष में वह एक बार भी 'बोर्डिंग हाउस' से रात के समय निकल छिटकी चाँदनी का दृश्य देखने का साहस नहीं कर सका था।

एक घंटा-भर वह बैठा रहा। जब उसको सर्दी लगने लगी तो वह उठा और भीतर आ, बिना मैट्रन के देखे बिस्तर में जा सो रहा। अब तो नित्य ही वह उठकर रात को बाहर जाने लगा। जाते समय वह अपने बिस्तर पर कंबल के नीचे तकिया और कपड़े ऊँचे कर रख जाता था जिससे सब समझें कि कोई सो रहा है। अँधेरी रातें आईं तो उसने बाहर जाना बंद कर दिया। परंतु पुनः चाँदनी रातों में यह कार्यक्रम आरंभ हो गया।

एक रात उसके एक साथी ने उसे देख लिया। वह भी उठा और उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। सुंदर अभी पत्थर पर बैठा ही था कि उसके कमरे का साथी कृष्ण रॉबर्ट उसके सामने आ खड़ा हुआ। पहले तो सुंदर उसे मैट्रन समझ डरा, परंतु तुरंत ही पहचान पूछने लगा, "तो तुम भी चले आए हो।"

"तुम कुछ बेवकूफ हो।"

"क्यों?"

"चाँदनी रात में तो पकड़े जाओगे और फिर बहुत पीटे जाओगे।"

"क्यों, मैंने क्या खराबी की है?"

"सोने के समय तुम जाग रहे हो।"

"तो क्या हुआ? इसमें खराबी क्या है?"

रॉबर्ट मुस्कराया और उसे मूर्ख समझ वहाँ से चल दिया। सुंदर मन में विचार कर रहा था कि चाँदनी रात में आकाश और आसपास की वस्तुओं की छटा देखने में भला किसी की क्या हानि हो सकती है? वह अपने साथी के मन की बात को समझ नहीं सका। उसे 'बोर्डिंग हाउस' के

रहस्य की बातों का अभी ज्ञान नहीं था और उसका रात का यह कार्यक्रम अधिक दिन तक चल नहीं सका।

[5]

इस घटना के तीसरे दिन सुंदर स्कूल में पहुँचा तो उसकी आँखें लाल हो रही थीं। उसके गालों पर चपत लगने के चिह्न थे। मिसेज़ पाल ने देखा तो विस्मय में उसका मुख निहारती रही। श्रेणी के बच्चे आने लगे थे, इस कारण मिसेज़ पाल का ध्यान बँट गया। उसने उस समय सुंदर से इसका कारण नहीं पूछा। वह यह समझी थी कि किसी लड़के से झगड़ा हुआ होगा और उसने सुंदर को पीटा होगा। परंतु किस कारण झगड़ा हुआ है और क्यों पीटा है, वह समझ नहीं सकी। सुंदर, वह जानती थी, दूसरों के हँसी-ठट्ठे की ओर ध्यान नहीं देता था। वह अपने ही विचारों में लीन रहता था। तो फिर यह आज क्या हुआ? वह जान नहीं सकी।

स्कूल का समय समाप्त होने पर मिसेज़ पाल ने सुंदर से अपने साथ चलने के लिए कहा। वह ठहर गया। मिसेज़ पाल स्कूल के कार्यालय में गई और पाँच मिनट में ही वहाँ से निकल, अपने क्वार्टर की ओर चल पड़ी। सुंदर उसके साथ-साथ था। मार्ग में मिसेज़ पाल ने पूछा, "सुंदर, तुम उदास क्यों हो?"

"मदर! मैं....." कहता-कहता वह रुक गया। मिसेज़ पाल ने घूमकर उसकी ओर देखा तो चकित रह गई। सुंदर रो रहा था।

"क्या बात है, सुंदर? तुम रो क्यों रहे हो?"

सुंदर कुछ बोल नहीं सका। अपनी जेब से रूमाल निकाल, वह आँखें पोंछने लगा। मिसेज़ पाल ने मार्ग में और कुछ पूछना उचित नहीं समझा। घर पहुँचकर वह उसको अपने कमरे में ले गई और स्वयं कुर्सी पर बैठ, उसको अपनी गोद में बैठा, उसकी आँखें पोंछते हुए पूछने लगी, "बेटा! किसी के साथ तुम्हारी लड़ाई हुई है?"

सुंदर ने सिर हिलाकर इनकार कर दिया। अभी भी रोने से उसकी

हिचकियाँ बँधी हुई थीं। वह बात नहीं कर सकता था। मिसेज़ पाल देख रही थी कि अभी भी उसके कपोल सूजे हुए हैं। प्रातःकाल तो सूजन बहुत ही अधिक थी और उस समय उसके गालों पर उँगलियों के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते थे। इस समय पूरा दिन व्यतीत हो जाने पर उँगलियों के चिह्न तो मिट गए थे, परंतु कपोलों की लाली और सूजन अभी भी विद्यमान थी।

कुछ देर प्यार देकर मिसेज़ पाल ने फिर पूछा, ''यदि किसी ने मारा नहीं तो यह तुम्हारे गालों पर क्या हुआ है?''

इस प्रकार का प्यार तो सुंदर को कभी उसकी बुआ ने भी नहीं दिया था। मिसेज़ पाल की गोद में बैठे हुए और अपने सिर को उसके वक्षस्थल पर रख, उसके प्यार के सुख के प्रभाव से उसमें कहने का साहस हो आया। उसने कहा, ''मैट्रन ने पीटा है।''

''क्यों? तुमने क्या किया था?''

''मुझको नींद नहीं आ रही थी। मैं बिस्तर से उठा और कमरे से निकलकर बाहर मैदान में जा बैठा। चाँदनी छिटक रही थी। अपने घर पर भी मैं कभी-कभी चाँद को देखने कुटिया से निकल आया करता था। यहाँ भी मैं पहले कई बार ऐसा कर चुका था। इस प्रकार घंटों ही आसमान पर चाँद और तारों को देखता रहता था। मुझे इसमें बहुत ही आनंद मिलता है।

''कल रात मैं मैदान में आकर, वहाँ पड़े एक पत्थर पर बैठ, अपने घर जैसा आनंद ले रहा था कि हमारे अनाथालय की एक लड़की, मिस सिमसन आकर मेरे पास बैठ गई। मैं अभी विस्मय में उसकी ओर देख ही रहा था कि उसने मुझे अपनी भुजाओं में दबोच मेरा मुख चूम लिया। मैं स्वयं तो उससे दूर हटता था, पर वह मुझसे और अधिक चिपकती जाती थी।

''इसी समय मैट्रन वहाँ आ पहुँची। मुझको देख उसने कहा, 'सुंदर!' इस पर वह लड़की मुझको छोड़ भाग गई। मैट्रन के हाथ में बेंत नहीं था। उसने मुझे जो चपत मारना आरंभ किया तो एक के पश्चात् एक मारती ही गई। दोनों हाथों से दोनों गालों पर वह मारती ही रही। मैं इस सबका कारण

समझ नहीं सका और चुपचाप मार खाता रहा। उसने मारना बंद कर दिया। मैं समझता हूँ कि वह थक गई होगी। मेरे सिर में चक्कर आ रहा था और जब उसने कहा, 'जाओ, लेट जाओ।' तो मैं अपने कमरे की ओर चल पड़ा। जब मैं भीतर लड़कियों के कमरे के सामने से गुजरा तो बहुत-सी लड़कियाँ अपने कमरे के द्वार पर खड़ी थीं। मुझको लड़खड़ाते कदमों से जाते देख सब-की-सब खिलखिलाकर हँस पड़ीं और पश्चात् मैट्रन को आते देख, उन्होंने अपने कमरे का द्वार भीतर से बंद कर लिया।

"आज प्रातःकाल सब बोर्डरों के सम्मुख मुझे खड़ा कर मेरा दोष वर्णन किया गया। यह कहा गया कि मैं रात को एक बजे, अपने बिस्तर से उठ, बाहर लॉन में एक लड़की से गले मिलता तथा उसका मुख चूमता हुआ देखा गया हूँ। यह पाप है और बोर्डिंग हाउस के नियमों के विपरीत है। इस कारण मुझको 'पब्लिक केनिंग' किया जाता है।

"मुझे इस झूठ पर रोष आ रहा था। मैं वहाँ से भाग जाना चाहता था। परंतु बोर्डिंग हाउस के तीन लड़कों ने मुझे पकड़कर मेरा मुर्गा बना दिया। मैट्रन ने पाँच बेंत गिनते हुए अपने पूरे बल से मेरे चूतड़ों पर लगाए।"

इस वृत्तांत को सुन मिसेज़ पाल का मुख क्रोध से लाल हो गया। उसने सुंदर की पीठ पर हाथ फेरते हुए, उसके दोनों गालों को चूमकर कहा, "मेरा बेटा सुंदर इस अपमान की चिंता नहीं करेगा। उसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। घर पर वह पढ़ नहीं सकता। यहाँ वह दस वर्ष में एम०ए० कर लेगा। तब वह किसी स्थान पर बड़ा अफसर बनेगा और इस समय के सब कष्टों को भूल जाएगा।"

इस पर भी सुंदर इस 'पब्लिक केनिंग' के अपमान को भूल नहीं सका। उसे विचार आया कि यह सब बदमाशी उसके कमरे के साथी कृष्ण रॉबर्ट की हो सकती है। उसने ही लड़की को सिखाकर भेजा होगा और फिर पीछे मैट्रन को सूचना दे दी होगी।

उस दिन उसका चित्त पढ़ाई में नहीं लगा। मिसेज़ पाल भी अपने

बचपन की बातों की स्मृति में खोई जा रही थी। उसको स्मरण था कि वह भी इसी यतीमखाने में पली थी और इस प्रकार लड़के-लड़कियों के परस्पर प्रेम-प्रलाप की वहाँ परंपरा है।

उसके काल में एक दयालु हृदय रखनेवाली मैट्रन थी। वह लड़कियों और लड़कों को समझाती रहती थी और उनको इस प्रकार से प्रेम करने के पाप से बचाती रहती थी। इस पर भी संपर्क और संबंध तो बनते ही रहते थे। जब वह ग्यारह-बारह वर्ष की थी और उसे मैट्रन की बातें समझ में आने लगी थीं तो वह अपनी सखियों-सहेलियों से पूछने लगी थी कि मैट्रन हमें नित्य यह बात क्यों कहती है? पहले तो लड़कियाँ उसके प्रश्न सुन हँस देती थीं। फिर एक लड़की ने उसे सब रहस्य की बात बता दी। रहस्य बतानेवाली लड़की का नाम निर्मला पीटर था। वह एक ईसाई की ही लड़की थी और मिस्टर पीटर अपने काम-धंधे के कारण नीचे मैदान में गया था तो लड़की को यतीमखाने में छोड़ गया था। निर्मला ने जब सब बात वासंती को समझाई तो वासंती ने पूछ लिया, "तो क्या तुम भी ऐसा किया करती हो?"

वह बोली, "मैंने तो अपना एक लड़का निश्चय कर रखा है और मैं उससे विवाह करूँगी। इस आशा में कि मैं उसकी पत्नी बनूँगी, वह मेरी दूसरे लड़कों से रक्षा करता है और हम पाप-कर्म नहीं करते। केवल कभी-कभी आलिंगनमात्र करते हैं।"

"पर तुम उससे कब मिलती हो?" वासंती का अगला प्रश्न था।

इस पर उसने यह रहस्य भी बता दिया। उसने कहा, "हम एक-दूसरे से संकेत कर स्थान और समय निश्चय करते हैं? एक दिन मैट्रन ने हमें आलिंगन करते देख लिया। इस पर उसने हम दोनों को सबसे पृथक् बैठाकर समझाया। मैंने कह दिया, 'मदर! हमारी सगाई हो चुकी है। ज्यों ही इसकी पढ़ाई समाप्त होगी, हमारा विवाह हो जाएगा।'

"इस पर मैट्रन ने हमको न तो पीटा और न ही हमें 'बोर्डिंग हाउस' से निकाला। परंतु उसने हमको प्रति सप्ताह 'कन्फ़ैशन' के लिए बुलाना

आरंभ कर दिया है। हम सब अपनी सत्य-सत्य बात उसे बताते रहते हैं। वह हमको परस्पर मिलने से मना करती रहती है। साथ ही हमारे लिए प्रार्थना भी किया करती है।''

वासंती के साथ ऐसी घटना काफी बड़ी आयु तक नहीं हुई। उस पर किसी लड़के की दृष्टि गई ही नहीं और वह स्वयं इतना साहस नहीं रखती थी कि स्वयं किसी से मित्रता उत्पन्न करे।

वह दसवीं श्रेणी में पढ़ती थी, जब मिस्टर पाल, जो बरेली कॉलेज से अपनी शिक्षा समाप्त कर आया था, उसमें रुचि लेने लगा। जब वह गिरजाघर में आर्गन बजाने के काम पर नियुक्त हुआ तो उसका उससे विवाह हो गया।

वर्तमान मैट्रन की क्रूरता का वृत्तांत सुन वह अपनी पूर्व स्मृतियों में लीन हो गई थी। उसका चित्त पढ़ाने को नहीं किया और न ही सुंदर का चित्त पढ़ने को कर रहा था। वह मदर की गोद में बैठा था कि बाहर से मिस्टर पाल आ गया।

वासंती ने सुंदर को गोद से उतारा और अपने पति से पूछने लगी, ''आज आप जल्दी क्यों आ गए हैं? क्या गाना सीखनेवाली लड़कियों की श्रेणी नहीं ले रहे?''

''आज मैंने उनको छुट्टी दे दी है। उस श्रेणी की एक लड़की आज सायं यहाँ चाय पीने आ रही है।''

''कौन है वह?''

''तुम देख लोगी।''

इस पर मिसेज़ पाल ने सुंदर को कह दिया, ''तुम आज जाओ। कल पढ़ाऊँगी।''

सुंदर अपनी पुस्तक ले पाल के बँगले से निकला तो सामने से वही लड़की आती दिखाई दी, जो उसके साथ रात बाहर चाँदनी में आ बैठी थी। सुंदर उसे देखता रह गया। वह लड़की उसके समीप से गुजरने लगी तो खड़ी हो बोली, ''सुंदर! मुझे पहचानते हो?''

"हाँ! परंतु....।"

"मैं तुमको रात में मिलूँगी।"

सुंदर रात में मिलने की बात सुन वहाँ से भागा। जो कुछ हो चुका था उसकी वह पुनरावृत्ति नहीं चाहता था।

वह मिसेज़ पाल से पाठ पढ़ आठ बजे बोर्डिंग हाउस में वापस आया तो उसके कमरे का एक साथी उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। सुंदर के पहुँचते ही वह उसको लॉन में एक ओर ले गया और पूछने लगा, "सुंदर! क्या हुआ था कल रात?"

सुंदर ने वही वृत्तांत, जो उसने मिसेज़ पाल को बताया था, अपने साथी को बता दिया। लड़के का नाम 'कृष्ण रॉबर्ट' था। वह पंद्रह वर्ष की आयु का युवक था और कॉलेज में पढ़ता था। सुंदर की बात सुनकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। सुंदर ने समझा कि शायद वह उसकी बात पर विश्वास नहीं कर रहा है। इससे वह डाइनिंग हॉल की ओर घूमा तो रॉबर्ट ने सुंदर के कंधे पर हाथ रखकर उसे रोक दिया। उसने कहा, "सुंदर! मुझे तुम पर विश्वास है। मैं जानता हूँ कि तुम हमारे रिवाजों को जानते नहीं हो। हम तो जब भी किसी लड़की से मिलना चाहते हैं, तो चाँदनी रात में उससे लॉन में नहीं मिलते। हम उसको बरामदे के किसी अँधेरे कोने में ले जाते हैं। मिस सिमसन इस बात को जानती है कि उसको लॉन में तुम्हारे पास कभी नहीं आना चाहिए था। मुझको विश्वास है कि सिमसन ने जान-बूझकर तुमको फँसाने के लिए यह किया है।"

"और मैं समझता हूँ कि यह सब शरारत तुम्हारी है।"

"मेरी कैसे?"

"तुमने मुझे पहले ही कहा था कि मैं पकड़ा जाऊँगा और पीटा जाऊँगा।"

"तो इसलिए मैंने पकड़वाया है? तुम अभी जंगली ही हो। देखो, मुझ पर विश्वास करो और मैं तुमको मिस सिमसन से मिलने का एक सुरक्षित स्थान बता दूँगा।"

"पर मैं उससे मिलना नहीं चाहता।"

रॉबर्ट हँस पड़ा।

सुंदर इस बात को समझ गया। इससे तो उसको इस पूर्ण स्थान, वातावरण तथा यहाँ के निवासियों से घृणा हो गई। उसकी आँखों में फिर आँसू उमड़ आए। उसने केवल यह कहा, "ऐसा उसने क्यों किया? मैंने तो कभी किसी से द्वेष किया नहीं।"

"मैं जानता हूँ उसने यह क्यों किया है। वह वास्तव में तुमसे प्यार करती है और तुमसे मिलना चाहती है। वह समझती है कि इससे तुम्हारे मन में उसके प्रति मुहब्बत पैदा होने लगेगी। जिसके कारण तुम्हारा अपमान हुआ है, उससे तुम बदला लेना चाहोगे और एक लड़का किसी लड़की पर विजय प्राप्त करके ही अपने अपमान का बदला पूर्ण हुआ मान सकता है।"

सुंदर को रॉबर्ट की बात पर विश्वास नहीं आया। वह लड़कियों के विषय में कुछ अधिक नहीं जानता था। इस पर भी वह समझता था कि कोई लड़की इस प्रकार सोच नहीं सकती, जैसा कि रॉबर्ट ने बताया है। इस पर भी यह तो सत्य ही था कि वह पीटा गया था। उसका मिस सिमसन से कोई संबंध नहीं था और वह स्वयं ही उसके साथ ऐसा अश्लील व्यवहार करने लगी थी। सबसे बुरी बात उसे यह लगी कि उससे इस विषय में एक शब्द तक नहीं पूछा गया और उसको दंड दे दिया गया। मन-ही-मन वह ग्लानि से भरता जाता था। वह समझता था कि उसका अपमान हुआ है और उसके साथ अन्याय हुआ है।

उसने रॉबर्ट के कथन का कुछ भी उत्तर नहीं दिया और रात खाने के हॉल में चला आया। वहाँ वह भोजन पर बैठ गया। कुछ अन्य लड़के और लड़कियाँ पहले से ही बैठे खा रहे थे। उसके वहाँ पहुँचते ही सब लड़कियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। हँसनेवालियों में सिमसन सबसे आगे थी।

इससे तो उसकी भूख ही मर गई। यद्यपि 'खाना परोसा जा रहा था, परंतु वह लड़कियों को टेढ़ी दृष्टि से अपनी ओर देख-देख हँसने पर,

भीतर-ही-भीतर ग्लानि अनुभव करने लगा था। भोजन परोसा गया और उसने एक-दो ग्रास मुख में डाले भी। परंतु ग्रास निगलने में उसको ऐसे कष्ट करना पड़ा, मानो वह शुष्क लकड़ी का भूसा निगल रहा हो। आखिर उसने खाना छोड़ दिया। दो घूँट जल पीकर वह मेज पर से उठ पड़ा, परंतु द्वार के समीप मैट्रन को हाथ में बैंत लिए खड़ी देख बैठ गया और परेशानी से रोटी की ओर देखने लगा।

जब सब खा चुके तो वह भी उठ पड़ा। सब बोर्डर द्वार में से निकल गए। वह भी बिना किसी के मुख पर देखे, वहाँ से चला गया। मैट्रन को देख उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जो दो-तीन ग्रास भोजन के उसके पेट में गए हैं, वे भी उल्टी के द्वारा बाहर निकलने वाले हैं।

वह अपने सोने के कमरे में जाने लगा था कि सिमसन उसका मार्ग रोककर खड़ी हो गई। सुंदर ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा तो वह बोली, ''तनिक इधर आओ, सुंदर!''

''क्यों?''

''मैं तुमसे क्षमा माँगना चाहती हूँ।''

''इसकी कोई जरूरत नहीं।''

''जरूरत है, तुमको नहीं, मुझको।'' इतना कह उसने उसकी बाँह-में-बाँह डाल दी और उसे घसीटकर डाइनिंग हॉल के पीछेवाले बरामदे में ले गई। वहाँ पहुँच उसने कहा, ''मुझे क्षमा कर दो।'' इतना कह उसने पुनः सुंदर का आलिंगन कर उसका मुख चूम लिया। यह सब कुछ इतना जल्दी हो गया कि सुंदर सँभल नहीं सका। सिमसन ने कहा, ''क्षमा कर दिया है न?''

इतना कह वह भाग गई?

[6]

सुंदर सिमसन के आज के व्यवहार से और भी अधिक क्रुद्ध हो उठा। वह उसी अँधेरे कोने में खड़ा, अपने और अधिक समय तक वहाँ

रहने के विषय पर विचार करने लगा था। वह वहाँ के सुख-आराम, मिसेज़ पाल के स्नेह का विचार करता था और अपने सबके सामने पीटे जाने से किए गए अपमान पर विचार करता था। अब यह रॉबर्ट और सिमसन के व्यवहार ने उसके मन में वह स्थान छोड़ने के निश्चय की पुष्टि ही की थी। यौन-आकर्षण की अनुभूति उसके शरीर में होने लगी थी। इस अनुभूति को पुष्टि मिली थी स्कूल और बोर्डिंग हाउस के वातावरण से। उसके साथी लड़के उसके सामने निस्संकोच लड़कियों की बातें करते रहते थे और उनसे मिलने के उपायों पर विवेचना करते थे। कई बार लड़के, जब मैट्रन उनको पीटती, तो उसमें गर्व का अनुभव करते और उसका वर्णन अपने साथियों के सम्मुख करते थे। किसी लड़की के लिए पीटा जाना उनके लिए गौरव का विषय होता था।

सुंदर के बाबा ने उसे बताया था कि लड़कियों में से एक से विवाह किया जाता है। विवाह के पश्चात् पति-पत्नी हो जाते हैं। इसी प्रकार भगवान् राम और सीता थे। विवाह से पहले सब लड़कियाँ बहिन-समान होती हैं और विवाह के पश्चात् पत्नी को छोड़कर सब लड़कियाँ और स्त्रियाँ माँ के समान होती हैं। अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी भी लड़की अथवा स्त्री से प्यार करना पाप है और उस पाप का फल नरक में जाकर भोगना पड़ता है।

एक दिन एक लड़के ने उसको बताया था कि उसका अमुक लड़की से 'लव' हो गया है। सुंदर ने पूछा, "लव क्या होता है?"

वह लड़का विस्मय में सुंदर का मुख देखता रह गया। तत्पश्चात् यह स्मरण कर कि वह अंग्रेजी नहीं जानता, अभी नया रिक्रूट हुआ है, उसने पूछा, "प्यार करना जानते हो?"

सुंदर ने अपने बाबा का कथन स्मरण कर कहा, "वही जो पति-पत्नी करते हैं?"

"हाँ, बस वही।"

"परंतु तुम्हारा तो उससे विवाह हुआ ही नहीं।"

''हम विवाह का अभ्यास कर रहे हैं।''

उसको न तो इस अभ्यास का अर्थ समझ में आया, न ही विवाह से पहले प्यार की बात रुचिकर प्रतीत हुई। उसने कहा, ''यह ठीक नहीं है।''

''तुम अभी नए हो इसलिए नहीं समझते। कुछ दिन साथ रहोगे तो सब समझ में आने लगेगा।''

इस कथन ने तो सुंदर के मस्तिष्क में विचारों की एक नवीन श्रृंखला उत्पन्न कर दी। क्या इनका समाज उससे भिन्न है, जिसमें वह रहता था? उसने अपने घर पर फूफा और बुआ को परस्पर प्यार करते कभी नहीं देखा था। उनको इस विषय पर कभी बात करते भी नहीं सुना था। हाँ, उसकी बुआ कहा करती थी कि सुंदर अब सज्ञान हो गया है, इसके विवाह के लिए लड़की ढूँढनी चाहिए। फूफा कह दिया करता था, 'मंगत की बड़ी लड़की इसके योग्य है।' इस पर बुआ कहती, 'वह लड़की कुछ मैले रंग की है, रूप-रेखा भी कोई तीखी नहीं है। हमारा सुंदर तो बहुत ही सुंदर बहू लाएगा।'

इसके अतिरिक्त प्यार के विषय में कभी बात नहीं होती थी। इसके विपरीत स्कूल और बोर्डिंग हाउस में तो जब भी दो लड़के पढ़ने अथवा खेलने से अवकाश पाते, प्रेम, लव, लड़की, सौंदर्य, आँखें, टाँगें इत्यादि पर बातें करने लग जाते थे।

लड़के-लड़कियाँ इकट्ठे पढ़ते थे; परंतु रहते पृथक्-पृथक् थे। दोनों के बोर्डिंग हाउस पृथक्-पृथक् थे और रात को अपने-अपने कमरों में बंद कर दिए जाते थे। बोर्डिंग हाउस के दोनों विभागों की एक ही मैट्रन थी और वह उनके परस्पर व्यवहार की खूब देख-भाल रखा करती थी। इस पर भी लड़के-लड़कियाँ ऐसे अवसर ढूँढ ही लेते थे, जब वे परस्पर मिल सकते थे।

इन सब बातों से वह यही समझा था कि वह एक नवीन समाज में आ गया है। इस पर भी वह अपने मन को इस नवीन समाज के रहन-सहन से सहमत नहीं कर सका था।

इस पर बेंत लगने की घटना हुई और वह भी सब बोर्डरों के सम्मुख। इस प्रकार हुए अपमान से वह गलता जाता था।

रात को वह सोया तो उसको नींद नहीं आई। उसको ऐसा अनुभव हो रहा था कि उसके सारे शरीर का रक्त सिर को चढ़ गया है। वह अपने को अत्यंत दु:खी और हीन मानने लगा था। इससे बचने का उसको एक ही उपाय सूझ रहा था और वह था वहाँ से चले जाना।

उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि वह इस नवीन समाज में नहीं रहेगा। इस निर्णय के पश्चात् वह सोचने लगा कि यहाँ से कहाँ जाया जाए और किस प्रकार निकला जाए।

घर से तो वह देश-विदेश देखने की लालसा से निकला था। अब तक अल्मोड़ा का सेंट जोसफ स्कूल और अनाथ बच्चों के लिए बने बोर्डिंग हाउस के अतिरिक्त उसने कुछ नहीं देखा था। इस कारण घर लौटकर जाने का विचार उसके मस्तिष्क में टिक नहीं सका। तो कहाँ जाए? उसको कुछ सूझ नहीं रहा था। उसने अपने साथियों से दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, बंबई इत्यादि बड़े-बड़े नगरों के सौंदर्य का वृत्तांत सुना था। परंतु वे सब किधर हैं, यहाँ से कितनी दूर हैं, वहाँ पहुँचने का साधन क्या है? इस प्रकार प्रश्नों की उलझन वह सुलझा नहीं सका।

अगला दिन रविवार था। गिरजाघर जाना था। अत: जल्दी-जल्दी नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर 'ब्रेक फास्ट' ले, ठीक नौ बजे वह लड़कों की पंक्ति में जा खड़ा हुआ। सवा नौ बजे वे पंक्तिबद्ध गिरजाघर के लिए चल पड़े। लड़कियों की पंक्ति उनसे पृथक् थी। दो पंक्तियाँ साथ-साथ गिरजाघर में प्रविष्ट हुईं और साढ़े नौ से पूर्व वे अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए।

स्कूल और बोर्डिंग हाउस के अधिकारी भी अपनी पत्नियों और बाल-बच्चों के साथ उनके लिए नियुक्त स्थानों पर बैठ गए। कुछ बाहर के लोग भी आए हुए थे। वे भी साढ़े नौ बजे से पूर्व अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए।

ठीक साढ़े नौ बजे घंटा बजा। दो मिनट तक वह बजता रहा। तत्पश्चात् आर्गन बजने लगा। मिस्टर पाल आर्गन पर किसी गीत की धुन बजा रहे थे। पाँच मिनट तक आर्गन बजता रहा। इस अवधि में उपस्थितगण चुप, शांत और स्थिर भाव से बैठे रहे। अब बोर्डिंग हाउस की कुछ लड़कियाँ, जो सबसे अगली पंक्ति में बैठी थीं, उठकर मंच पर आ गईं और धर्मगीत गाने लगीं। इनमें सिमसन भी थी। उसका स्वर अति मधुर और अन्य सबके स्वरों से अधिक रसमय था।

धर्मगीत में प्रभु यीशुमसीह से प्रार्थना की गई थी कि वे संसार में बसे सब अबोध बालकों को उँगली पकड़कर स्वर्ग का मार्ग बताएँ। वे इनको दस मुख्य पाप कर्मों से बचाएँ।

पाँच मिनट तक गाना हुआ और तत्पश्चात् पादरी फादर एवलीन मंच पर उपदेश देने लगा। उसने अंजील में से एक पद पढ़ा और फिर उसकी व्याख्या करनी आरंभ कर दी। पद था—'भगवान् की दस आज्ञाएँ। इनके पालन करने से मनुष्य का कल्याण होता है।'

फादर एवलीन ने इन दस आज्ञाओं की व्याख्या की। इसमें एक आज्ञा थी, जिसमें कहा गया था कि 'तुमको व्यभिचार नहीं करना चाहिए।' इस व्यभिचार शब्द की उसने व्याख्या की। इससे सुंदर के मन में कुछ प्रकाश-सा होने लगा। ज्यों-ज्यों वह पादरी के कथन का अर्थ समझता गया, त्यों-त्यों वह बोर्डिंग हाउस के लड़के-लड़कियों के व्यवहार पर आश्चर्य अनुभव करने लगा।

उपदेश समाप्त हुआ। उपस्थित बाहरी परिवारों ने दान के डिब्बे में कुछ सिक्के डाले और सब लोग गिरजाघर से बाहर निकलकर परस्पर बातचीत करने लगे। पाँच-छः मिनट तक बातचीत होती रही। इस काल में रॉबर्ट सुंदर से मिलने के लिए आया। उसने पूछा, "सुंदर! कल सिमसन तुमसे मिली थी क्या?"

"हाँ, वह क्षमा माँगती थी!"

"तो तुमने उससे बेंत लगाने का बदला क्यों नहीं माँगा?"

"क्या माँगता?"

रॉबर्ट खिलखिलाकर हँस पड़ा। सुंदर विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। इस पर रॉबर्ट ने कहा, "तुम तो निरे गँवार हो। तुमको बहुत-कुछ सिखाना पड़ेगा। देखो सुंदर! सब लड़कियाँ तुमको बोर्डिंग हाउस के लड़कों में सबसे सुंदर समझती हैं। वे सभी तुम्हारी मोटी-मोटी आँखों पर लट्टू हो रही हैं। इस कारण तुमको भी सबसे सुंदर लड़की का चुनाव कर लेना चाहिए, अन्यथा भारी गड़बड़ी मच जाएगी।"

"क्या गड़बड़ मच जाएगी?"

"प्रत्येक लड़की तुमको अपना मित्र बनाना चाहेगी और तुममें किसी के लिए रुचि न देख, वे परस्पर लड़ पड़ेंगी और फिर तुम्हारी झूठी शिकायतें होंगी। इससे शिकायत करनेवाली लड़की की शिकायत होगी और सब लड़कों के रहस्य खुल जाएँगे। यह तो ठीक नहीं है।"

"अच्छी बात है, विचार करूँगा।"

सुंदर ने निश्चय कर लिया कि वह उस स्कूल और बोर्डिंग हाउस को छोड़ देगा।

मिसेज़ पाल ने मिसेज़ स्मिथ से सुंदर के विषय में पूछा तो उसने बताया कि वह रात को तीन-चार बार उठकर सब लड़के-लड़कियों को सोया हुआ देखा करती है। उस रात उसने सुंदर का बिस्तर खाली देखा। वह तुरंत लड़कियों के कमरे में गई। वहाँ सिमसन का बिस्तर खाली पड़ा था। वह टॉर्च लेकर उसको ढूँढने लगी। उसने उन दोनों को बाहर मैदान में पत्थर पर बैठे, परस्पर आलिंगन करते और मुख चूमते देखा तो वह क्रोध में उतावली हो वहाँ जा पहुँची। तब तक सिमसन भाग गई थी और उसने सुंदर को वहीं पर खूब पीटा। अगले दिन सिमसन से पूछा तो उसने बताया कि वह पेशाब करने गई थी। सुंदर कहीं से निकल आया और उसको बलपूर्वक घसीटकर मैदान में ले गया। वह कह रहा था, 'चाँदनी बहुत सुंदर है और वह उसको लव करता है।'

"यह बयान सिमसन ने पवित्र पुस्तक पर हाथ रखकर, शपथ खाकर

दिया था, इससे मुझे उस पर विश्वास करना ही पड़ा। अतः बोर्डिंग हाउस के नियमानुसार मैंने उसका 'पब्लिक केनिंग' किया था।''

मिसेज़ पाल इस कथा को सुनकर रो पड़ी। वह मन में विचार कर रही थी कि वह सब झूठ है। सुंदर के कोमल मन पर इस झूठ का कितना बुरा प्रभाव पड़ सकता है! सिमसन तो लड़की है, अभी चौदह-पंद्रह वर्ष की होगी। वह इस प्रकार के झूठ के परिणाम को समझ नहीं सकती। परंतु मिसेज़ स्मिथ ने बिना भली प्रकार जाँच किए, दंड देकर सुंदर के मन पर ईसाई धर्म की महिमा को कम कर दिया है।

वह विचार कर रही थी कि किस प्रकार मिसेज़ स्मिथ के मूर्खतापूर्ण व्यवहार के दुष्प्रभाव को कम करे। उसने निश्चय किया कि सोमवार को स्कूल में वह सुंदर को समझाएगी और उसको धर्म की अच्छाई और मनुष्य की दुर्बलता में अंतर बताएगी।

घर पहुँच, उसने मदर मरियम के सम्मुख खड़े हो शीश झुका, मन-ही-मन प्रार्थना की। वह इस प्रार्थना में सुंदर के लिए कुछ माँग रही थी। प्रार्थना के समय उसके होंठ निरंतर हिल रहे थे। तत्पश्चात् दाहिने हाथ से अपनी छाती पर 'क्रॉस' का चिह्न बना, वह अपने पति के पास चली गई।

पाल ने पूछ लिया, ''अभी-अभी तो तुम गिरजाघर से आई हो और फिर मदर के सामने प्रार्थना कर रही थीं।''

''हाँ।''

''तुमने कोई भारी गुनाह किया मालूम होता है?''

''मैंने नहीं किया। यह तो किसी अन्य ने किया है और मैं उसकी माफी के लिए प्रार्थना कर रही थी।''

''किसके लिए?''

''वही लड़की है जिसको आप कल यहाँ चाय का निमंत्रण देकर लाए थे।''

''मिस सिमसन?''

''हाँ।''

"उसने क्या गुनाह किया है?"

इस पर वासंती ने वह बात जो सुंदर ने बताई थी, बता दी और फिर मैट्रन मिसेज़ स्मिथ की बात बता दी।

"इससे तो सुंदर तुम्हारी प्रार्थना का पात्र प्रतीत होता है। मिस सिमसन ने उस लड़के से भला क्या लेना है?"

"मुझे विश्वास है कि सुंदर बेकसूर है।"

"भला कैसे? मैं तो समझता हूँ कि तुम उस लड़के से खुद मुहब्बत करने लगी हो।"

"हाँ, करने तो लगी हूँ परंतु एक पुत्र की तरह। मुझे ऐसा अनुभव होता है कि वह मेरा छोटा भाई अथवा बेटा ही है।"

"यह सब बकवास है। मुझे तो कई दिन से तुम पर संदेह हो रहा था। तुम उसको गोद में उठा उसे छाती से लगा प्यार करती हो। तुम बदकार हो। मैं समझता हूँ कि तुमको 'रैवरेंड गार्डन' के सामने आज ही 'कन्फेशन' के लिए जाना चाहिए।"

"वह तो अभी मैं कल गई थी और अपनी सब बात बता आई हूँ। उसमें कुछ भी ऐसा नहीं था जो मैं आपके सामने नहीं बता सकती।"

"मुझे किसी औरत पर विश्वास नहीं आता।"

"मगर डीयर! हम तो पति-पत्नी हैं। हमें परस्पर सत्य का व्यवहार करना चाहिए।"

"ठीक है। मगर मैं तुमको उस लड़के के मोह-जाल में फँस गया समझने लगा हूँ। तुम प्रतीक्षा कर रही हो कि वह कुछ बड़ा हो जाए तो उसके साथ भाग खड़ी हो।"

"यह सब झूठ है।" अब वासंती ने कुछ आवेश में कहा।

"मैं किसी दिन तुमको रँगे हाथ पकड़कर तलाक के लिए रैवरेंड से कहूँगा।"

"तलाक कैसे हो सकता है? हम तो जीवन-भर के लिए पति-पत्नी के रूप में बँधे हुए हैं।"

"यही तो मुसीबत है।"

[7]

अगले दिन सुंदर क्लास-रूम में नहीं आया। इससे मिसेज़ पाल को चिंता लग गई। क्लास छूटने पर वह कार्यालय में गई। वहाँ क्लर्क से उसने सुंदर के विषय में पूछा तो उसको पता चला कि पिछले दिन बोर्डिंग हाउस से एक लड़का भाग गया था। उसकी पुलिस थाने में रिपोर्ट भी लिखा दी गई है।

मिसेज़ पाल ने पूछा, "क्या नाम है उस लड़के का?"

"नाम पता नहीं। सब कहते हैं कि उस लड़के को दूर कैलाश के मार्ग पर बस्तियों में से लाया गया था। मैट्रन स्मिथ का विचार है कि वह जंगली पुनः अपने घर की ओर लौट गया होगा। पुलिस ने उसकी खोज में दो कांस्टेबल भेज दिए हैं।"

मिसेज़ पाल को इस सूचना से अति दुःख हुआ। उसका विवाह हुए पाँच वर्ष हो चुके थे और उसके कोई संतान नहीं हुई थी। इस कारण उसको सुंदर से पुत्र-समान स्नेह अनुभव होने लगा था। जब से उसे पीटा गया था, वह अनुभव कर रही थी कि सुंदर अपने-आपमें अपमानित किया गया समझ रहा था। अब उसके लापता हो जाने से, वह अपने जीवन में जो कुछ थोड़ा-बहुत रस अनुभव करने लगी थी, विलुप्त हो गया था।

एक क्षीण-सी आशा थी कि यदि पुलिसवाले उसको मार्ग में मिल गए तो पकड़ लाएँगे। एक बात से वह डर रही थी कि सुंदर पुलिसवालों के साथ आने से इनकार करेगा तो क्या होगा?

चार दिन बाद थाने से सूचना मिली कि 'कांस्टेबल' लौट आए हैं और लड़का घर पर नहीं गया। लड़के के फूफा सुमेर ने कहा है कि वह नहीं लौटा। उसके झोंपड़े की तलाशी भी ली गई थी। वह वहाँ भी नहीं है।

यह सूचना वासंती ने अपने पति को दी तो उसने घृणा की दृष्टि से पत्नी की ओर देखते हुए कहा, "तुम तो उस छोकरे के जाने से अपने को

विधवा अनुभव करने लगी हो।''

''शट-अप्।'' वासंती ने कहा, ''मैं उस लड़के के लिए यह झूठा आरोप नहीं सुन सकती।''

इसके उपरांत पति-पत्नी पृथक्-पृथक् कमरों में सोने लगे।

किंतु सुंदर अपने घर जाने के लिए नहीं लौटा था। वह गिरजाघर से निकल लड़कों की पंक्ति में बोर्डिंग हाउस में पहुँचा तो अवसर पा अहाते से निकल नगर की ओर चल पड़ा। वह जानता था कि मैदान की ओर जाना चाहिए। उधर बस जाती है; परंतु बस में जाने का भाड़ा देना होता है, भाड़ा उसके पास नहीं था।

इतना जानते हुए भी वह नगर में पहुँच, बस के अड्डे पर जा पहुँचा। बहुत-सी सवारियाँ चढ़ रही थीं। कुली उनका सामान उठाकर बस पर चढ़ा रहे थे। सुंदर के मन में भी आया, यहाँ मजदूरी कर कुछ रुपए इकट्ठे कर लेने चाहिए। इतने में एक भद्र पुरुष एक स्त्री और एक लड़की के साथ रिक्शा पर आया। एक अन्य रिक्शा में उसका सामान लदा था। दोनों रिक्शा बस के अड्डे पर आ खड़ी हुईं। सुंदर ने लपककर आगे बढ़ते हुए पूछा, ''सामान उतारूँ साहब ?''

यह प्रश्न सुनकर वह पुरुष विस्मय में सुंदर के मुख की ओर देखता रह गया। उस स्त्री ने कहा, ''तुमसे नहीं उठाया जाएगा।''

''माँ जी! उठा लूँगा।''

इस पर पुरुष ने पूछ लिया, ''नए-नए काम करने आए हो ?''

''जी।''

''तो नौकरी कर लो।''

''क्या काम करना होगा, साहब ?''

''घर की सफाई, बाजार से सामान खरीदना और कई अन्य इसी प्रकार के कार्य करने होंगे।''

''कर लूँगा।''

''हमारे साथ बंबई चलना होगा।''

"चला चलूँगा।" उसने अपने विस्मय को प्रकट न करते हुए कहा।

"कितने रुपए लोगे?"

"जो आप उचित समझें, दे दीजिएगा।"

"तुम्हारे माँ-बाप कहाँ हैं?"

"मैं अनाथ हूँ, साहब!"

"कहाँ रहते हो?"

"सेंट जोसफ आर्फनेज में रहता था। आज वहाँ से चला आया हूँ।"

"तो वे तुमको ढूँढ रहे होंगे?"

"क्यों ढूँढेंगे? मैंने उनका कुछ चुराया नहीं है। ये कपड़े उनके हैं, परंतु जब मैं आया था, तब मेरे पास भी अपने कपड़े थे, जो उन्होंने उतार लिए थे।"

अब तक एक अन्य कुली ने उनका सामान उतार लिया था और उसे वे बस पर चढ़ा रहे थे। स्त्री ने पुरुष को कुछ डाँटने के स्वर में कहा, "सामान को तो देखो?"

इससे सुंदर को खेद-सा हुआ। न तो सामान ही उठाने को मिला और जो नौकरी की बात चल रही थी, वह भी पूरी नहीं हो सकी। उस पुरुष ने कुली को कहा, "ऐ कुली! सामान गिनकर रखना।"

इतना कह उसने पुनः सुंदर की ओर देखा, जो अब किसी अन्य का सामान उठाने के विषय में विचार कर रहा था। इसी समय उस पुरुष ने आवाज दी, "ओ लड़के! इधर आओ! क्या नाम है, तुम्हारा?"

"सुंदर!"

"सच? ठीक, तुम सुंदर हो। चलो, तुमको नौकर रख लिया। देखो, चोरी नहीं करोगे तो तुमको बहुत इनाम मिलेगा।"

इतना कह उसने अपनी लड़की, जो स्त्री के पास खड़ी थी, से कहा, "भावना! देखो यह सुंदर है। इसको नौकर रख लिया गया है। अपना बैग इसको पकड़वा दो।"

लड़की ने सुंदर को देखा, परंतु बैग नहीं दिया। पुरुष बस के टिकट

खरीदने के लिए चला गया था। उसकी स्त्री ने सुंदर से पूछा, ''क्या नाम है तुम्हारा?''

सुंदर इस समय अपने मन में बंबई नगर के उस चित्र पर मनन कर रहा था, जो उसने अपने मित्रों के मुख से सुन रखा था। वह इतना तल्लीन था कि उसे उस स्त्री का प्रश्न सुनाई ही नहीं दिया। उसका उत्तर उसकी लड़की ने देते हुए बताया, ''माँ! यह सुंदर है।''

औरत ने विस्मय में लड़के के मुख की ओर देखकर कहा, ''सुंदर? हाँ, है तो सुंदर ही।''

साढ़े तीन टिकट खरीद लिए गए। भावना अभी दस वर्ष से छोटी थी। उसका आधा टिकट लिया गया।

वे लोग अल्मोड़ा से काठगोदाम और वहाँ से बरेली, तदनंतर दिल्ली और वहाँ से बंबई जा पहुँचे। यदि थाने में रिपोर्ट लिखानेवाला पुलिस को यह न बताता कि भागा हुआ लड़का अपने गाँव कैलाश के मार्ग पर गया होगा, तो पुलिस बस के अड्डे पर खोज करती। संभवतया वह काठगोदाम फोन भी करती। इससे सुंदर पकड़ लिया जाता। परंतु पुलिस ने रिपोर्ट के आधार पर दो सिपाहियों को कैलाश के मार्ग पर भेज दिया। इसी में उन्होंने कर्तव्य का पालन पूर्ण समझ, संतोष की साँस ली और सुंदर बिना किसी विघ्न-बाधा के बंबई पहुँच गया।

उस पुरुष का नाम यादवदेव विक्रमजी था। वह बंबई में एक कपड़ा मिल का मालिक था। अल्मोड़ा में भ्रमण के लिए आया हुआ था और दो सप्ताह वहाँ रहकर अब बंबई वापस जा रहा था। साथ में उसकी पत्नी राधा और पुत्री भावना थीं।

भावना का कोई भाई नहीं था। यादवदेव ने सुंदर को देखा तो उसको वह बहुत ही भोला-भाला तथा मेधावी प्रतीत हुआ। मार्ग में ही उसने सुंदर का पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया था। सुंदर ने बोर्डिंग-हाउस में अपने पीटे जाने तथा लड़कियों के व्यवहार का वृत्तांत नहीं बताया था। उसको अपने अपमान और लड़कियों की निर्लज्जता की बात बताने में संकोच हुआ था।

उसने केवल यह बताया कि बोर्डिंग-हाउस की मैट्रन बहुत ही क्रूर स्वभाव की स्त्री है। उसके व्यवहार से तंग आकर ही उसने वह स्थान छोड़ा है।

यादवदेव ने उससे पूछा, ''कितना पढ़े हो?''

''घर पर तो कोई पढ़ना-लिखना जानता नहीं था। मेरे फूफा सुमेर सेना में भर्ती हो, हिंदी-उर्दू सीखकर आए थे। मैंने जब उनसे कहा, मुझे यह सिखा दो तो कहने लगे कि उस झोंपड़ी में रहनेवाले को इस पर मगज़पच्ची करने की जरूरत नहीं। अनाथालय में मिसेज़ पाल, स्कूल तथा घर पर पढ़ाया करती थीं। वे कहती थीं कि दो वर्ष में मुझे पाँचवीं श्रेणी जितना पढ़ जाना चाहिए। छः मास में उन्होंने मुझको अंग्रेजी की प्राइमर और आधी प्रथम पुस्तक पढ़ा दी थी। गणित में गिनती और पहाड़े, जोड़, ऋण तक सीख गया हूँ। इस समय गुणा और भाग का अभ्यास कर रहा था।''

''हिंदी सीखे हो?''

''वह क्या होती है?''

''वह हमारे देश की भाषा है।''

''हमारा देश कौन-सा है?''

''भारत।'' यादवदेव को इससे विस्मय हुआ। फिर यह विचार कर कि वह सर्वथा वीरान स्थान से आया है, चुप रहा। परंतु इस पर सुंदर के प्रश्न से तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। सुंदर ने पूछा, ''सुभाष बाबू कहाँ हैं?''

यादवदेव कई मिनट तक सुंदर के मुख पर देखता रहा। फिर कुछ विचार कर पूछने लगा, ''तुम क्या जानते हो सुभाष बाबू के विषय में?''

''मेरा फूफा भारत की स्वतंत्र सेना में रहा है। वह सरकार का कैदी हो गया था। पीछे पंडित जवाहरलालजी के आंदोलन से वह और उसके साथी छूट गए थे।''

''ओह! तब तो तुम बिल्कुल असभ्य नहीं हो।''

यह सभ्यता और असभ्यता की विवेचना सुंदर की समझ में नहीं आ रही थी। इससे वह आश्चर्यवत् अपने मालिक का मुख देखता रहा।

[8]

यादवदेव ऑलम्पिक क्लॉथ मिल का मालिक था और बाईकुला में एक बहुत बड़े मकान में रहता था। घर में सेठजी के परिवार के तो केवल तीन ही प्राणी थे। सेठ साहब, उनकी धर्मपत्नी राधा और लड़की भावना। इसके अतिरिक्त यादवदेव के भाई का एक लड़का रत्नलाल, अपनी पत्नी सुमित्रा के साथ उसी घर में रहता था। वह एक्साइज़ विभाग में एक उच्चाधिकारी था। अपने चाचा के मकान में बहुत स्थान होने के कारण बिना किराया दिए ही रहता था।

रत्नलाल का पिता अहमदाबाद में व्यापार करता था और अच्छा धनी आदमी था। इसके अतिरिक्त राधा का छोटा भाई मणिलाल भी उसी मकान में रहता था। मणिलाल की आयु लगभग बारह वर्ष की थी और वह भावना से दो श्रेणी आगे पढ़ता था। दोनों सेंट टॉमस स्कूल में पढ़ते थे। वे दोनों प्राय: मोटर में इकट्ठे ही स्कूल जाते और आते थे।

यादवदेव पूजा-पाठ में बहुत विश्वास रखता था। वह तथा उसकी पत्नी प्रति रविवार मंदिर में जा, पूजा-पाठ कर, दान-दक्षिणा दिया करते थे। धर्मोपदेश में उसकी भारी निष्ठा थी।

पूर्णिमा के दिन घर पर सत्यनारायण की कथा कराते थे और घर के तीनों प्राणी श्रद्धापूर्वक कथा का श्रवण करते थे। अब इनमें एक चौथा व्यक्ति सुंदर भी सम्मिलित हो गया।

रत्नलाल तथा मणिलाल इस कथा-कीर्तन में रुचि नहीं रखते थे। वे कथा के समय प्राय: कहीं खिसक जाया करते थे।

सुंदर को केवल दो काम बताए गए थे। एक तो तीन व्यक्तियों के कमरों की सफाई करना। इन कमरों में अन्य नौकरों का आना वर्जित हो गया था। और दूसरा काम था बाजार से घर के लिए सौदा लाना। यों तो एक रसोइया था। वह महाराज के नाम से पुकारा जाता था और सुंदर के आने से पूर्व वही रसद-पानी का प्रबंध करता था। दस वर्ष से वह सेठजी की नौकरी

कर रहा था और इन दस वर्षों में एक दुबले-पतले युवक से बढ़कर पौने तीन मन का मोटा महाराज बन गया था। वह जब भी घर जाता था, एक-दो ट्रंक अन्यान्य वस्तुओं तथा कपड़ों से भरकर साथ ले जाया करता था।

इस वर्ष महाराज जब अपने घर जाने लगा तो सेठजी को संदेह हो गया कि इस बार एक ट्रंक कुछ बड़ा और सदा से अधिक भारी है। सेठजी ने पूछ लिया, "महाराज! बहुत-कुछ ले जा रहे हो इस बार?"

"हाँ, सेठजी! भगवान् की कृपा से आप जैसे दयालु स्वामी जिसे मिले हों, तो फिर क्यों न ट्रंक भारी हो जाए?"

"महाराज! तनिक दिखाओ तो सही कि हमारी दया की सीमा कहाँ तक पहुँची है।"

"सेठजी! दया तो एक असीम वस्तु है। इसकी तो कोई सीमा ही नहीं बाँधी जा सकती। लीजिए, आपकी दया है तो फिर सब-कुछ है। फिर आपको दिखाने में क्या संकोच हो सकता है।"

महाराज ने ट्रंक खोला। उसमें रेशमी और सूती साड़ियाँ थीं, सोने-चाँदी के आभूषण थे और बच्चों के लिए खिलौने भरे पड़े थे। महाराज के अपने वस्त्र थे और फिर ट्रंक के एक कोने में एक-एक तोले के सोने के पाँच टुकड़े रखे हुए थे।

महाराज को पचास रुपया मासिक मिलते थे और रोटी-कपड़ा सेठजी के घर से ही दिया जाता था। इस ट्रंक में तो केवल सोना ही पाँच सौ रुपए का था। सोने-चाँदी के आभूषण भी दो-तीन सौ रुपए तक के थे। एक घड़ी थी, जो सौ रुपए से कम मूल्य की नहीं होगी। सब-कुछ मिलाकर एक सहस्र रुपए का सामान था।

सेठ यादवदेव मुस्कराया और बोला, "महाराज! हमारे अतिरिक्त क्या कहीं अन्यत्र भी कुछ काम करते हो?"

"हाँ, सेठजी! मैं एक छोटा-सा व्यापार भी करता हूँ।"

"ओह! तो तुमको भी बंबई की हवा लग गई है।"

"सेठजी! यहाँ रहते हुए दस वर्ष हो गए हैं। अनेक निर्धनों को

लखपति होते देखा है और लखपतियों को निर्धन होते। मैं कई दुकानदारों के कमीशन-एजेंट के रूप में कार्य करता हूँ।''

''ओह! सत्य? किस-किस दुकानदार की एजेंटी करते हो और इसके लिए तुम्हें समय कौन-सा मिलता है?''

''जब आपके लिए बाजार से सामान खरीदने जाता हूँ तो दुकानदार मुझको बिक्री पर दस प्रतिशत कमीशन देते हैं और लगभग एक सहस्र रुपए की मैं उनकी मासिक बिक्री करा देता हूँ।''

''तब तो ठीक है। अर्थात् पिछले दस मास में तुमने कम-से-कम दस सहस्र रुपए की बिक्री कराई है। ये संदूक की वस्तुएँ कम-से-कम एक सहस्र रुपए के लगभग की तो होंगी ही।''

''हाँ जी! सब धन, जो मैंने इन वस्तुओं पर व्यय किया है, वह ग्यारह सौ तीस रुपए था।''

सेठ यादवदेव चुप कर रहा। उसने घर के लिए उस पूर्ण सामान का मूल्य आँका, जो महाराज के द्वारा लाया गया था। पिछले वर्ष वह लगभग तेरह सहस्र रुपए का था। इससे सेठ समझ गया कि महाराज उसके माल पर ही दुकानदार से दलाली लेता रहा है।

महाराज के घर जाने से पहले ही सुंदर आ गया था और उसके पीछे वह माल खरीदकर लाने लगा। खाने-पीने का सामान, एक पाठशाला के निर्धन विद्यार्थियों के लिए अन्न, मासिक सदाव्रत के लिए अन्न, घी, चीनी इत्यादि, छोटा-मोटा कपड़ा और घर के लिए अन्य आवश्यक वस्तुएँ, सब मिल-मिलाकर लगभग ग्यारह-बारह सौ रुपए महीने का होता था।

दस-बारह दिन में ही सुंदर सब दुकानदारों से परिचित हो गया था और नियत भाव पर माल लाने लगा था। मासिक बिल भुगतान करने जब वह गया तो दुकानदारों ने उसको बता दिया कि सेठजी का पहला नौकर महाराज उनसे दस प्रतिशत कमीशन लेता था।

सुंदर ने कहा, ''इस बार वह कमीशन आप बिलों में कम कर दीजिए।''

"यह हम नहीं कर सकते। ऐसा करने पर आगे वाले नौकर बिल कमीशन कटवाकर बनवाएँगे और फिर अपना कमीशन उससे पृथक् माँगेंगे।"

"तो अलग दे दीजिए।"

महीने के पश्चात् जब सुंदर ने सेठानी को हिसाब बताया और अपने कमीशन के एक सौ तीस रुपए भी साथ रख दिए तो सेठानी समझ नहीं सकी। सुंदर ने वे सब बातें, जो दुकानदार के साथ हुई थीं, बता दीं, किंतु इस पर भी सेठानी कुछ समझी नहीं। रात को सेठजी घर आए। राधा ने सुंदर की सारी बात उनको बताई तो वह खिलखिलाकर हँस पड़े। राधा ने पूछा, "क्या बात है जी?"

"तुम्हारा वह तुलसी की माला जपनेवाला चोर इतने रुपए उस काम में से चुरा लेता था, जिसके लिए उसको हम वेतन देते थे।"

"सत्य? तब बहुत बेईमान था वह।"

"हाँ, तभी तो फूलकर कुप्पा हुआ जाता था।"

"आप सुंदर को क्या वेतन दे रहे हैं?"

"अब तुम ही बताओ, क्या वेतन देना चाहिए। मेरे विचार में तो वह दो सौ रुपए मासिक का काम कर रहा है।"

सेठानी हँस पड़ी और बोली, "घर के नौकर को दो सौ रुपए मासिक वेतन और सरकारी पढ़े-लिखे बाबू को एक सौ बीस रुपए!"

"हाँ राधा! सरकारी बाबुओं को आता ही क्या है?"

"वे बेचारे नित्य नौ घंटे काम जो करते रहते हैं।"

"केवल चक्की पीसते हैं।"

"और यह क्या करता है?"

"कभी रात के समय देखा करो कि वह क्या किया करता है।"

"क्या किया करता है वह?"

"जब वह यहाँ आया था तो हिंदी का एक अक्षर नहीं जानता था। अंग्रेजी की पहली किताब पढ़ता था। उसको आए डेढ़ मास हो गया है।

इस काल में वह हिंदी की तीसरी पुस्तक पढ़ने लग गया है और अंग्रेजी की दूसरी।''

''कहाँ से और कब पढ़ता है वह?''

''भावना से पढ़ता है और रात को पाठ याद करता है।''

''तब तो वह बहुत अच्छा लड़का है।''

''हाँ, पर मैं चाहता हूँ कि उसका वेतन तो पचास रुपए ही ठीक होगा और उसके कमीशन का रुपया तुम पृथक् बैंक में जमा करा दिया करो। किसी समय उसको दे देंगे।''

इस बार महाराज पाचक छुट्टी समाप्त हो जाने पर लौटा तो उसको रसोई बनाने का काम तो दिया गया, परंतु बाज़ार से सामान खरीदने का काम सुंदर से ही लिया जाता रहा। इस पर तो महाराज दुबला पड़ने लगा। वह असंतुष्ट और सुंदर से झगड़ा भी करता दिखाई देने लगा।

महाराज को सुंदर के विरुद्ध आरोप लगाने का कोई बहाना नहीं मिल रहा था। उसकी लगभग सौ-सवा सौ रुपए महीने की ऊपर की आय सुंदर के करण समाप्त हो गई थी।

एक दिन उसने सुंदर को कमीशन लेने के अपराध से सेठानीजी की दृष्टि में पतित करने के लिए कह दिया, ''माँ जी! यह सुंदर अच्छा लड़का नहीं है।''

''अच्छा?'' सेठानीजी ने विस्मय में पूछा, ''क्या खराबी की है उसने?''

''यह बहन भावना के कमरे में घुसा रहता है।''

''मुझे ज्ञात है। वह उससे पढ़ा करता है।''

''माँजी! यह ठीक नहीं हो रहा।''

''देखो, महाराज! तुम अपना काम देखो। तुमको दूसरों की निंदा अथवा प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं है। मैं जानती हूँ, वह वहाँ क्या करता है?''

इस प्रयास में विफल हो वह एक दिन सुंदर से साँठ-गाँठ करने

लगा। उससे कमीशन का एक भाग लेने का यत्न करने लगा। उसने कहा, "सुंदर भैया! तुमको दुकानदार सामान पर कमीशन नहीं देता?"

"देता है।" सुंदर ने कह दिया।

"कितनी बन जाती है?"

"आजकल तो दो-पौने दो सौ रुपया मासिक तक हो जाती है।"

"और वह कहाँ रखते हो?"

"किसलिए पूछ रहे हो, पंडित?"

"उसमें मेरा भाग भी तो है।"

"तुम्हारा भाग क्यों और कैसे बनता है?"

"मैंने ही यह प्रथा चलाई थी। इस कारण इसमें मैं भी भागीदार हूँ।"

"पर मैं तो उसे सेठजी का हक मानता हूँ और प्रतिमास सब रकम सेठानीजी के पास जमा करा देता हूँ।"

"उनके पास क्यों?"

"वस्तुओं का दाम वे देती हैं और उन पर कमीशन भी तो उन्हीं को मिलनी चाहिए।"

"अबे सुंदर! यह बात नहीं। वे बाजार में माल खरीदने जाएँ तो उनको कमीशन नहीं मिलेगी। यह तो नौकरों का भाग है।"

"नहीं महाराज! मैं ऐसा नहीं समझता। वह जिनका भाग है उनको दे देता हूँ। देखो महाराज! मुझसे कुछ झगड़ा किया तो मैं यह सब बात माँजी के सामने कह दूँगा और फिर नौकरी से निकाल दिए जाओगे।"

महाराज यहाँ से भी निराश हुआ तो रत्नलाल के पास पहुँचा। उसने उसे सुंदर के विरुद्ध भड़काने का यत्न किया, परंतु रत्नलाल को अपने स्वार्थ की हानि नहीं पहुँचती थी। इस कारण उसने बात टाल दी।

महाराज इस सुंदर का काँटा निकालने के लिए जब सब प्रकार के यत्न कर असफल हो चुका तो वह भगवान् से नित्य प्रार्थना करने लगा कि वह सुंदर को अपने घर बुला ले।

द्वितीय परिच्छेद

[1]

सुंदर को सेठ यादवदेव की नौकरी में आए तीन वर्ष हो गए थे। इन तीन वर्षों में वह मैट्रिक के बराबर हिंदी, अंग्रेज़ी, गणित, इतिहास और भूगोल पढ़ गया था। भावना अभी आठवीं श्रेणी में पढ़ती थी। राधा का भाई मणिलाल मैट्रिक में पढ़ता था। सुंदर उसकी पुस्तकें लेकर पढ़ा करता था। एक दिन सुंदरलाल 'टेल्ज फ्रॉम शेक्सपियर' पढ़ रहा था। इससे पहले, कठिन शब्दों और वाक्यों के अर्थ वह भावना से पूछ लिया करता था। अब भावना भी उसको समझाने में कुछ कठिनाई अनुभव कर रही थी। सुंदर बहुत तेजी से पढ़ाई में उन्नति कर रहा था। भावना ने एक कठिन शब्द का अर्थ बताने में असमर्थता प्रकट की तो वह मणिलाल के पास जा पहुँचा।

मणिलाल ने उसके प्रश्न को सुनकर कहा, "सुंदर! तुम घर का काम किया करो। यह व्यर्थ की पुस्तकें पढ़ने से क्या होगा?"

"मणिलाल भैया! मैंने अर्थ पूछा है, पढ़ने के लाभ और हानि के विषय में तो मैंने कुछ भी नहीं पूछा।"

"मैं कोई शब्दकोष नहीं हूँ। जाओ, ऐसे अर्थ डिक्शनरी में देख लिया करो।"

"वह क्या होती है?"

"एक पुस्तक होती है, जिसमें सब शब्दों के अर्थ लिखे हुए होते हैं।"

"सत्य?"

"हाँ।"

सुंदर अगले दिन अपने वेतन के रुपयों में से दस रुपए माँग एक अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश खरीद लाया। उसके लिए इससे ज्ञान-वृद्धि का एक और द्वार खुल गया। जिस पुस्तक को भावना और मणिलाल से पूछ-पूछकर पढ़ने में एक मास लगता था, वह अब पंद्रह दिन में ही समाप्त होने लगी।

परिणाम यह हुआ कि जब वह सोलह वर्ष का हुआ तो डिकन्ज़ की 'टेल ऑफ टू सिटीज' सुगमता से पढ़कर अर्थ लगा सकता था। अब वह कार्लाइल की 'फ्रैंच रेवोल्यूशन' पढ़ता था। इतना ही नहीं, अब भावना उससे पूछने आया करती थी।

भावना को स्मरण था कि किस प्रकार वह उनको अल्मोड़ा के बस-स्टैंड पर कुली का काम करने के लिए उत्सुक, परेशानी की स्थिति में मिला था और तब वह सब देखनेवालों को सुंदर प्रतीत हुआ था। अब तो वह पूर्ण कौमार्यावस्था के ओज से पूर्ण, अद्‌भुत आकर्षण का केंद्र था।

वह प्रातः पाँच बजे उठा करता था। अभी घर के प्राणी सोए होते थे कि स्नानादि से निवृत्त हो सेठजी की बैठक और घर के अन्य कमरे साफ कर दिया करता था।

जब सेठजी पूजागृह में आते तो पूजा का सारा सामान यथास्थान सजा हुआ उन्हें मिलता। जब वे अपने स्टडी रूम में जाते तो प्रत्येक वस्तु करीने से लगी और अपने-अपने स्थान पर रखी मिलती थी। सफाई की यह बात होती थी कि धूल का एक कण भी कहीं दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार सेठानीजी तथा भावना के कमरे भी साफ-सुथरे तथा सुसज्जित होते थे।

अब कुछ मास से सेठजी ने सुंदर को अपने कपड़े धोबी को देने और उससे लेने तथा उनकी मरम्मत कराकर सँभालकर रखने और आवश्यकता पड़ने पर निकालकर देने का काम सौंप दिया था।

सेठजी साढ़े नौ बजे मिल को जाते थे। उनके जाने के उपरांत सुंदर को अपने स्वाध्याय का समय मिल जाता था। भावना और मणिलाल भी स्कूल चले जाते थे। इस समय वह हिंदी की पुस्तकें पढ़ता। रामायण, महाभारत तथा भागवत् इत्यादि पुस्तकें सेठजी के पुस्तकालय से पढ़ने को मिल जाती थीं। वह हिंदी-शब्दकोष भी ले आया था और जहाँ कहीं अर्थ समझने में कठिनाई होती थी, वह शब्दकोष की सहायता ले लिया करता थथचा।

ठीक एक बजे पुस्तकों को अपने-अपने स्थान पर रखकर, वह पुनः सेवा के लिए तैयार हो जाता। सेठजी भोजन करने घर आया करते थे। जब वे सेठानीजी के साथ भोजन करते, तब उनके पीछे खड़ा रहता और उनके भोजन परोसने को देखता रहता।

वे भोजन कर उठ जाते तो वह स्वयं भोजन करता। सेठजी ढाई बजे मिल लौट जाते तो वह रसोई का तथा सेठानीजी अथवा भावना दिन के समय जो बता जाती थी, सामान खरीदने बाजार चला जाता। वहाँ से वह छः बजे तक लौटता। सबको सामान पहुँचाकर वह सेठजी के आने से पूर्व उनकी बैठक को एक बार पुनः झाड़ देता और अन्य आवश्यक सामान ठीक कर देता।

सुंदर घर का एक विश्वस्त व्यक्ति माना जाता था। वह भावना, राधा इत्यादि के साथ ऐसे हिल-मिलकर रहता था, जैसे सेठानीजी का अपना जाया बच्चा हो। इस पर भी वह कुछ दिनों से घर के वातावरण में एक परिवर्तन अनुभव कर रहा था। रत्नलाल सुंदर को टेढ़ी दृष्टि से देखता था। कभी सुंदर कुछ बात कहता तो बिना कुछ उत्तर दिए मुख दूसरी ओर मोड़ लेता था। मणिलाल भी अब उससे दूर-दूर रहने लगा था। उसके पुकारने का ढंग भी बदल गया था। वह अब 'ओ सुंदर' कहकर पुकारने लगा था।

सुंदर घर के इस बदले हुए वातावरण पर चिंतित था, परंतु न तो उसे इसका कारण किसी ने बताया था और न ही वह किसी से पूछ सकता था। वह समझता था कि यदि वह किसी से उसके व्यवहार के विषय में पूछेगा

तो वह एक प्रकार से अपने-आपको स्वयं ही दोषी सिद्ध कर देगा। उसे यह विदित था कि लोग 'चोर की दाढ़ी में तिनका' वाली कहावत कहने लगते हैं।

परंतु बात हो गई। एक दिन वह बाजार से घर का सामान खरीदने चला तो रसोइया महाराज साथ हो लिया। उसे साथ चलता देख सुंदर ने घूमकर उसकी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि में देखा तो महाराज पूछने लगा, "सुंदर! कब जा रहे हो?"

"कहाँ महाराज?"

"नौकरी छोड़कर?"

"मैं तो नौकरी छोड़ नहीं रहा।"

"तो जूतों से पीट-पीटकर निकाले जाओगे।"

"क्यों, मैंने क्या अपराध किया है?"

"तुमने सेठजी की लड़की भावना से अनुचित व्यवहार किया है।"

"और उसने तुम्हारे पास शिकायत की है?"

"मेरे पास तो नहीं। परंतु यह बात नौकर-चाकरों में विख्यात हो गई है। अवश्य ही उसने अथवा जिस किसी ने भी देखा होगा, सेठजी से शिकायत की होगी।"

"देखो पंडित!" सुंदर ने कुछ डाँट के भाव में कहा, "मैंने ऐसी कोई बात नहीं की। भावना को मैं बहन मानता हूँ और उसके अनुरूप मैं उसका आदर करता हूँ। यदि तुम कुछ बात जानते हो तो बताओ, अन्यथा मेरी बहन के विषय में कुछ मिथ्यावाद किया लो तुम्हें तो मैं पीटे बिना रहूँगा नहीं। अब तुम चले जाओ। मैं तुमसे बात नहीं करना चाहता।"

पंडित ने सुंदर की आँखों में खून उतरा देखा तो भयभीत हो लौट गया। पर सुंदर के मन में एक भय उत्पन्न कर गया। उसे संदेह हुआ कि कोई है जो उसकी शिकायत कर रहा है। वह जानता था कि उस पर यह आरोप मिथ्या है और उसे विश्वास था कि भावना उसके व्यवहार को कभी अनुचित कह नहीं सकती। सबसे बड़ी बात यह थी कि घर के सब लोग

उसे देख गंभीर हो जाया करते थे। केवल भावना ही थी जो अभी भी उससे मुस्कराकर बात किया करती थी।

महाराज की बात सुनकर भी उसने यही उचित समझा कि उस ओर से सावधान रहना चाहिए। किसी के मन में किसी प्रकार का संदेह भी उत्पन्न होने नहीं देना चाहिए कि वह भावना से उचित से अधिक सामीप्य अथवा किसी प्रकार का अनादर का भाव रखता है।

इस पर भी घर में रहते हुए अब वह पहले से भी अधिक घर के प्राणियों को अपने से विलग हो रहा अनुभव करने लगा था।

सेठ यादवदेव और राधा अब उसकी बातों पर हँसते नहीं थे और जब वह काम-काज से एक कमरे से दूसरे कमरे में जाता, तो उनकी आँखें उसके पीछे-पीछे घूमती दिखाई देने लगी थीं। सुंदर इस परिवर्तन का अर्थ नहीं समझ सका था। इस पर भी वह पूर्ववत् अपने कार्य में तत्पर रहता था।

घर में अब केवल भावना ही थी, जो उसे देखकर अभी भी मुस्कराती और उससे उसी ढंग से बातें किया करती थी, जैसे वह पहले करती थी। घर के अन्य प्राणी कहीं सामने होते तो वे इन दोनों को बातचीत करते देख, घूर-घूर कर देखा करते। एक-दो बार सुंदर को उनकी तीव्र दृष्टि का अनुभव हुआ, परंतु चूँकि वे कुछ कहते नहीं थे, इस कारण वह इसको अपने मन का भ्रम मान चुप रह जाता था।

वास्तव में एक काष्ठा का समय आ रहा था। एक दिन रात का भोजन करते समय सुंदर, सदा की भाँति, वहाँ उनके पीछे आकर खड़ा हुआ तो सेठजी ने कह दिया, ''सुंदर! अब तुमको इस प्रकार यहाँ आकर खड़े होने की आवश्यकता नहीं है।''

''तो क्या आप मुझे नौकरी से निकालने का विचार कर रहे हैं?''

सेठजी ने मुस्कराकर कहा, ''नहीं सुंदर! मैं तुम्हारी तरक्की करने का विचार कर रहा हूँ। मैंने सुना है कि तुम शेक्सपियर पढ़कर उस पर टीका-टिप्पणी करने लगे हो?''

''जी नहीं, मैं स्वयं को अभी इतना योग्य नहीं समझता।''

''परंतु मैंने तुम्हारे शेक्सपियर पर लिखे नोट्स देखे हैं। बहुत अच्छे लिखे हैं। हमारी भावना तो उन्हें समझ भी नहीं सकती।''

''जी इसमें कारण है। वह अभी तेरह वर्ष की बच्ची है। मैं सोलह वर्ष का हो रहा हूँ। शेक्सपियर मानव-उद्गारों के विषय में लिखता है। मैं भावना से अधिक जीवन की ऊँच-नीच देख और सह चुका हूँ। इस कारण जो मैं समझता हूँ, वह उसके समझने से भिन्न है। मैं समझता हूँ कि यदि मुझसे भी बड़ी आयु का कोई व्यक्ति हो, तो मुझसे भी अधिक समझेगा। मानव-मन एक अथाह सागर है। इसकी भावनाओं में जितनी गहरी डुबकी कोई लगानी जानता हो, उतने ही अधिक रत्न उसे प्राप्त होंगे।''

सेठ सुंदर की बात नहीं सुन रहा था। वह तो उस सुंदर की मूरत को स्मरण कर रहा था, जिसको वह नौकर रखने के लिए साथ लाया था। वह अनपढ़, पहाड़ी लड़का अब शेक्सपियर पर टिप्पणी करने लगा था।

''देखो सुंदर! कई दिन से मैं विचार कर रहा हूँ कि तुम्हें मिल में किसी काम पर लगा दूँ। परंतु तुम्हारी योग्यता तुम्हारी आयु की अपेक्षा बहुत अधिक है। इस कारण जो भी काम तुम्हारी योग्यता के अनुसार है, वह तुम्हारी आयुवाले को दिया नहीं जा सकता।''

''मैं तो इससे यह समझता हूँ कि अब आपको मेरी सेवाओं की आवश्यकता नहीं रही।''

''नहीं, यह बात नहीं सुंदर! इधर सामने आकर बैठो।'' उस समय खाने की मेज पर सेठ, सेठानी और भावना बैठे थे। भावना अपने माता-पिता के बीच बैठी थी। सुंदर उनके साथ बैठकर भोजन करने में संकोच करता था। ऐसा पहले कभी हुआ भी नहीं था। इस कारण सुंदर ने कहा, ''आप भोजन करिए। मुझे यहाँ खड़ा होने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो रहा है।''

''कष्ट का प्रश्न नहीं, सुंदर! तुम आज हमारे साथ ही भोजन करो।''

अभी भी संकोचवश सुंदर वहीं पीछे खड़ा था। भावना हँस पड़ी। हँसकर बोली, "बैठो न! पिताजी की आज्ञा का पालन नहीं करोगे?"

सुंदर किसी प्रकार अपना साहस बटोर, घूमकर मेज की दूसरी ओर जाकर बैठ गया। बैरे को कह दिया गया कि सुंदर के लिए भी खाना ले आए।

अभी खाना परोसा ही जा रहा था कि रत्नलाल और उसकी पत्नी आ गए। रात का खाना वे प्राय: सेठजी के साथ बैठकर खाया करते थे। कभी सिनेमा या क्लब गए हों तो बात दूसरी थी। आज वे आए और सुंदर को मेज पर बैठा देख तथा उसके सामने भी खाना रखा देख, खड़े-के-खड़े ही रह गए।

सेठ यादवदेव उनके मन की भावना को समझता तो था, परंतु उस ओर ध्यान न देते हुए कहने लगा, "खड़े-खड़े क्या देख रहे हो, रत्नलाल?"

"कुछ अस्वाभाविक प्रतीत हो रहा है। आज सुंदर को यह मान-प्रतिष्ठा किस उपलक्ष्य में दी जा रही है?"

"इसका तुम्हारे खाने से क्या संबंध है? भोजन तो महाराज ने ही बनाया है।"

"चाचाजी!" रत्नलाल ने अभिमानयुक्त मुद्रा में कहा, "मैं एक सरकारी अफसर हूँ। मुझको डेढ़ सहस्र रुपया वेतन मिलता है। मेरे साथ बैठकर राज्य के मंत्रीगण खाना खाते हैं। ऐसी अवस्था में एक अज्ञात माता-पिता की संतान, दो-दो पैसे का सामान खरीदने के लिए रखे नौकर, अनपढ़, गँवार व्यक्ति के साथ बैठकर खाना खाने में मैं अपना अपमान समझता हूँ।"

"तो ऐसा करो रत्नलाल! तुम····" सेठ अभी अपनी बात समाप्त भी नहीं कर पाया था कि सुंदरलाल मेज पर से उठ खड़ा हुआ। उठकर उसने कहा, "भैया! आइए, आप पहले खा लीजिए। मैं बाद में खा लूँगा।"

सेठ इस स्थिति में कुछ उद्विग्न-सा हो गया। उसने सुंदर को कहा, "बैठ जाओ, सुंदर! मैं आदेश देता हूँ, तुम यहीं पर बैठ जाओ।"

आदेश का शब्द सुनकर सुंदर विस्मय में कभी सेठ के मुख की ओर और कभी रत्नलाल के मुख की ओर देखने लगा। सेठ ने रत्नलाल को कुछ कहने का अवसर न देते हुए कहा, "यह मेरा घर है। क्या मैं अपने घर में भी, अपनी इच्छा से किसी का मान नहीं कर सकता?"

"कर सकते हैं, चाचाजी! आप इस छोकरे का मान कर लीजिए, हम कहीं अन्यत्र जाकर भोजन कर लेंगे।"

सेठ कुछ कहने ही वाला था कि रत्नलाल और उसकी पत्नी डाइनिंग हॉल से निकल गए। उनको जाता देख सेठानी भी उठकर चली गईं। सेठ अभी भी बैठा रहा। उसने बैरे से कहा दिया, "माताजी का भोजन उनके कमरे में दे आओ।"

"और रत्नलाल बाबूजी... ?" बैरे ने पूछा।

"उनसे पूछ लो। कहें तो उनका भी उनके कमरे में दे आओ।"

[2]

सेठ, उनकी लड़की भावना और सुंदरलाल ही डाइनिंग हॉल में रह गए थे। सुंदर की आँखों से आँसू बह रहे थे। वह समझ रहा था कि यह सब उसके कारण ही हुआ है। इस बात के समझने में कठिनाई नहीं थी कि उसके इस घर में स्थान के विषय में मतभेद हो गया है। अपने मन में वह विचार करता था कि जिस परिवार ने उसके साथ इतना कुछ किया है, उसे एक पशु से मनुष्य बनने का अवसर दिया है, उसमें ही वह वैमनस्य का कारण बने, यह उचित नहीं।

इस समय उसको अल्मोड़े के सेंट जोसफ स्कूल की अध्यापिका मिसेज़ पाल का वात्सल्य स्मरण हो आया। वहाँ पर हुए अपमान से बचने के लिए जब वह भागा था, तो उसे मिसेज़ पाल से पृथक् होने का भारी दुःख हुआ था। यहाँ सेठ यादवदेव के घर पर तो उसको न केवल

वात्सल्यता मिली थी, प्रत्युत् मान और विश्वास भी मिला था। यहाँ से जाने पर तो उसको न केवल दुःख ही होगा, प्रत्युत् वह सेठजी के भी दुःख का कारण बन जाएगा। इस पर भी अपमान सहन करने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी।

सेठ, भावना और सुंदरलाल के सामने खाना परोसा गया। सेठ ने एक ग्रास खाकर छोड़ दिया। भावना और सुंदर ने तो छुआ भी नहीं। तीनों खाने से उठे और चुपचाप अपने-अपने कमरों में चले गए।

सुंदर को पिछले कई मास के खिंचाव का कारण और उसका परिणाम स्पष्ट हो गया। वह अपने मन में निश्चय कर बैठा था कि अब वह इस घर को छोड़ देगा। वह इस समय विचार कर रहा था कि किस प्रकार छोड़ा जाए। अब पढ़ने से और पूर्वापेक्षा अधिक अनुभव होने से, उसको निश्चय करने में उतनी देर नहीं लगी, जितनी अल्मोड़ा के अनाथालय को छोड़ने में लगी थी।

उसने निश्चय किया कि वह एक चिट्ठी सेठजी को लिखकर छोड़ दे। इस विचार के आते ही वह कागज-कलम लेकर पत्र लिखने बैठ गया। उसने सेठजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए लिख दिया, ''मैं आपके परिवार में वैमनस्य का कारण बनकर कृतघ्न बनना नहीं चाहता। अतः मैं आज जा रहा हूँ।

''मैं यहाँ पर बेसरो-सामान आया था और वैसे ही जा भी रहा हूँ। इस पर भी आपके घर में रहकर जो कुछ मिला और जो अब मेरे मन और शरीर का भाग बन गया है, उसे मैं अपने से पृथक् नहीं कर सकता। मेरे शरीर में वृद्धि हुई है। मेरे मन का विकास हुआ है। ये मेरे साथ आपकी कृपा और सहिष्णुता की स्मृति बन मरणपर्यंत रहेंगे।

''माताजी ने आज मुझको पचास रुपए दिए थे, वे व्यय नहीं हुए। उन्हें मैं मेज की दराज में रखे जा रहा हूँ।

''भावना बहन ने मुझे एक कलम दी थी। वह मैं साथ ले जा रहा हूँ। बहन का उपहार वापस करने का साहस मुझमें नहीं है। माताजी तथा

भावना बहन को मेरा नमस्कार कह दीजिएगा।

"मेरे दोष को क्षमा कर भुला दीजिएगा।

आपका पुत्र-तुल्य...

वह अभी हस्ताक्षर करने ही लगा था कि पीछे से किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने घूमकर देखा, भावना खड़ी थी। उसने विस्मय से उसके मुख पर देखा तो भावना ने डबडबाई आँखों से कहा, "मैं तुमको यहाँ से कभी नहीं जाने दूँगी।"

"क्यों?"

"बस मैं नहीं चाहती।"

"परंतु क्यों? क्या तुमको मेरा अपमान होता देख कुछ अच्छा लगता है?"

"मैं उस अपमान को मान में बदलने का विचार रखती हूँ।"

"कैसे?"

"तुमसे अपने विवाह की घोषणा कराकर।"

"विवाह? नहीं, यह नहीं होगा। तुम बच्चों की-सी बातें करती हो। छोड़ो मुझको। व्यर्थ की बात मत करो।"

"तुम नहीं समझते, सुंदर! सुनो! इस झगड़े को चलते हुए बहुत समय हो गया है। यह तो तुम जानते ही हो कि मणिलाल मेरे साथ मोटर में स्कूल जाया करता था। पिछले वर्ष से वह स्कूल छोड़कर कॉलेज में भर्ती हो गया। इससे हम दोनों का इकट्ठे स्कूल जाना बंद हो गया था। दो मास हुए, एक दिन वह मेरे पास आया और मुझको मोटर में जुहू चलने के लिए कहने लगा। मैं पहले तो मानी नहीं, परंतु उसके बहुत कहने पर मान गई। मोटर में ही उसने मेरे साथ सटकर बैठते हुए कहा, 'भावना! तुम तो अब बहुत सुंदर दिखाई देती हो।'

"मैने कहा, 'यह तो अच्छी बात है।'

'मैं एक बात कहने के लिए आज तुमको इधर लाया हूँ।'

'हाँ, बताओ, क्या कहना चाहते हो?'

'पहले तुम बताओ मैं तुमको कैसा लगता हूँ?'

'मुझको तो तुम वैसे ही बंदर जैसे दिखाई देते हो, जैसे स्कूल में लगते थे।'

'तो क्या मेरी सूरत-शक्ल में कोई अंतर नहीं पड़ा?'

'कुछ विशेष तो दिखाई नहीं देता।'

'इस पर भी मैं लड़का हूँ। हमारे कालिज की कई लड़कियाँ मुझ पर डोरे डाल रही हैं। किंतु मैं तो अपना जीवन एक लड़की से बाँधने का निश्चय कर चुका हूँ।'

'किससे?'

'तुमसे।'

''मैं उसका अभिप्राय समझती थी। मुझे उसकी मानसिक प्रवृत्ति पर संदेह हुआ था। इस पर भी बात न समझने का बहाना करते हुए मैंने कहा, 'मुझसे तो तुम पहले ही बँधे हुए हो। तुम मामा हो, मैं भानजी हूँ।'

'हट! मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ।'

'पर, भानजी तो लड़की के समान होती है।'

'यह सब मूर्ख, असभ्य तथा अनपढ़ लोगों की बातें हैं। हम आज डेमोक्रेटिक और स्वंतत्रता के युग में भी वैसी बातें करें, जैसे जंगली लोग प्रागैतिहासिक काल में किया करते थे, तो हमको चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए।'

'कुछ भी हो, मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकती।'

'तो मैं बलपूर्वक तुम्हारा हरण करूँगा।'

'तुम मुझ पर बल-प्रयोग करोगे?'

'क्यों, मैं तुमसे बलशाली नहीं हूँ क्या?'

''इस पर मैंने अपने पूरे बल से एक चपत उसके मुख पर लगाई और ड्राइवर को गाड़ी रोकने को कहा।

''ड्राइवर हमारी बातें सुन रहा प्रतीत होता था। उसने हँसकर गाड़ी खड़ी कर दी और नीचे उतर, गाड़ी का द्वार खोल, मणिलाल को कहने

लगा, 'मामाजी! आप अगली सीट पर आ जाइए।'

"मणिलाल चुपचाप, भीगी बिल्ली की भाँति, आगे ड्राइवर के पास जा बैठा। जब हम लौटकर घर पहुँचे तो सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसने कहा, 'मैं जानता हूँ तुम सुंदर को पसंद करती हो।'

'बकवास बंद करो।' इतना कह मैं जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ गई।

"मैंने उसी रात पिताजी को पूर्ण वृत्तांत बता दिया। इस पर पिताजी बोले, 'तो मणिलाल का कहना सत्य है कि तुम सुंदर को पसंद करती हो?'

"मैं इस बात का कोई उत्तर नहीं दे सकी। मैं वास्तव में तुमको मणिलाल से कई गुणा अच्छा समझती हूँ। इस पर भी मैंने कहा, 'पिताजी! विवाह माता-पिता करते हैं। जिसके साथ करिएगा, वही पसंद हो जाएगा।'

"इसके पश्चात् माता-पिता में मेरे विवाह के विषय में बातचीत होनी आरंभ हो गई। मणिलाल और माताजी में तो नित्य ही घुल-घुलकर बातें होती हैं। मणिलाल और रत्नलाल में भी गुप्त गोष्ठियाँ हो रही हैं।

"मुझे लगता है कि पिताजी का विचार तुमको अपना दामाद बनाने का हो रहा है। एक दिन माताजी और पिताजी में क्रोध में बातें हो रही थीं। मुझको अपने कमरे में भी बोलने का शब्द सुनाई दे रहा था। इस पर भी वहाँ बैठ मैं समझ नहीं सकी थी कि किस विषय में बातें हो रही हैं। एकाएक मुझको मणिलाल का नाम सुनाई दिया। मेरे कान खड़े हो गए और उनकी बातें स्पष्टतया सुनने के प्रलोभन को छोड़ नहीं सकी। मैं उठकर गई और उनके कमरे के द्वार पर कान लगाकर उनका वार्तालाप सुनने लगी। पिताजी कह रहे थे, 'मुझको भावना ने सब बातें बताईं तो मैंने ड्राइवर से पूछा और उसने भावना के कथन का समर्थन कर दिया। मैं उस बदमाश को इस घर से निकाल देना चाहता हूँ।'

'युवक है।' माताजी ने कहा, 'भूल कर बैठा है। इस अवस्था में आपने क्या कुछ नहीं किया होगा। अब शक्ति क्षीण हो गई है तो पूजा-पाठ, धर्म-कर्म में आप रुचि लेने लगे हैं।'

''पिताजी बोले, 'यह ठीक है, राधा! परंतु मैंने अपनी भानजी से संबंध जोड़ने का यत्न तो नहीं किया था। यह नैसर्गिक ज्ञान तो मुझको बचपन से ही था कि बहन, भानजी पत्नी नहीं बन सकतीं। हाँ, मैं 'सेंट टॉमस स्कूल' में नहीं पढ़ा था।'

'उस स्कूल में तो आपकी लड़की भी पढ़ी है।'

'परंतु उसका बीज भले आदमी का प्रतीत होता है।'

'तो क्या मणिलाल भले माता-पिता की संतान नहीं है?'

''यह मैं क्या जानूँ? उसके कर्म तो तुमने सुन ही लिए हैं।'

'तो अपने बीज के पैदावार की बात भी सुन लो। वह अभी से सुंदर से संबंध स्थापित कर चुकी है।'

'मणिलाल ने कहा है न?'

'नहीं, रत्नलाल कहता है। वह तो आपके घर में सबसे अधिक पढ़ा-लिखा और समझदार लड़का है। उसको ही बुलाकर पूछ लो।'

'राधा! यह झूठा लांछन तुम अपनी लड़की पर लगाकर ठीक नहीं कर रही हो। इस पर भी सुनो। मैंने कई बार अपने मन में विचार किया है। सुंदर एक अच्छा दामाद बन सकता है। परंतु यदि तुम्हारा कहना सत्य हुआ तो उसका मुख काला कर घर से निकाल दूँगा।'

'झूठ और सत्य का निर्णय कैसे होगा?'

'मैं कल से चोरी-चोरी लड़की और सुंदर की गतिविधियों पर नजर रखूँगा। रत्नलाल को भी कहूँगा कि अपने कहे हुए को सिद्ध करे।'

'ऐसी बात सिद्ध करनी और वह भी आप सदृश पक्षपाती व्यक्ति के सम्मुख, यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य ही है।'

'तो बिना प्रमाण के मैं भी इतने बड़े झूठ को मान नहीं सकता।'

''इसके पश्चात् से पिताजी, माताजी, रत्नलाल और सुमित्रा भाभी तुम्हारे प्रत्येक कार्य की देख-रेख करते रहे हैं। पिताजी ने तुम्हारी पुस्तकों की तलाशी ली है। तुम्हारी लिखी कापियों को पढ़ा है और तुमको रात सोते हुए भी देखा है।

''तीन-चार दिन की बात है। मैं स्कूल गई हुई थी। तुम बाजार सामान खरीदने के लिए गए हुए थे कि पिताजी और माताजी में कुछ बातें हुई प्रतीत होती हैं। उसी रात माताजी मेरे सोने के कमरे में आईं और मुझसे कहने लगीं, 'भावना, सुमित्रा के भाई मोहन से विवाह कर लो। इसमें तुम्हारा भी कल्याण होगा हमारा भी।'

''मैंने पूछा, 'कैसे कल्याण होगा, माँ! केवल इसलिए कि वह सुमित्रा का भाई है?'''

'देखा भावना! वह रत्नलाल की पत्नी का भाई है। कई बार यहाँ आया भी है। उसके विषय में रत्नलाल कह भी रहा है। मैं इस संबंध को ठीक समझती हूँ।'

'परंतु माँ! मेरे विवाह की चिंता क्यों लग गई अभी से? हमारे स्कूल की मुख्याध्यापिका पैंतीस वर्ष से कम नहीं होंगी। अभी तक उन्होंने शादी नहीं की है। सुना है अब कहीं करने का विचार कर रही हैं। मेरी आयु तो अभी चौदह वर्ष की ही हुई है।'

'तुम्हारी मुख्याध्यापिका अवश्य ही किसी निर्धन घराने की होगी। यदि उसके बाप की भी कोई कपड़ा मिल होती, तो उसका कभी का विवाह हो गया होता और अब तक उसके घर में पोता खेल रहा होता।'

'तो क्या धन होने से विवाह जल्दी होना चाहिए?'

'होना चाहिए अथवा नहीं, मैं यह बात नहीं कह रही; परंतु हो अवश्य जाता है। फिर यह सुंदर भी तो घर में है। एक बे-माँ-बाप का लड़का लखपति बन जाएगा।'

'वह लखपति क्यों बन जाएगा?'

'तुम्हारे पिता उससे तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं।'

'और माँ! तुम क्या चाहती हो?'

'मैं इतनी बड़ी संपत्ति एक नौकरपेशा आदमी, वह भी परदेशी के हाथ में जाने देना नहीं चाहती।'

'तो माँ! पिताजी और तुम मणिलाल को 'गोद' ले लो। पिताजी के

लाखों उसको मिल जाएँगे और मैं, जो मेरे भाग्य में होगा ले लूँगी।'

'तुम्हारे पिता मानते नहीं हैं, अन्यथा यह बात आज से बहुत पहले हो चुकी होती।'

'तो माँ! पिताजी को मना लो। मैं तो अभी विवाह नहीं करूँगी।'

"मेरा इस प्रकार स्पष्ट उत्तर सुनकर, माँ निराश-सी वहाँ से उठकर चली गईं।"

[3]

बात महाराज ने ही चलाई थी। पिछले छः वर्ष से वह मस्जिद के चूहे की भाँति दुबला हो रहा था। उसे वेतन तो मिलता था, परंतु उतने से उसका बनता कुछ नहीं था। ऊपर की आय का लटका लगा तो अब उसके बिना उसकी नींद हराम हो रही थी।

एक दिन, यह उक्त घटना से एक मास पहले की बात थी, महाराज ने मणिलाल को भावना की ओर लालसापूर्ण दृष्टिपात करते देखा तो छिद्र को देख उसके द्वारा अपने कार्य की सिद्धि की बात विचार करने लगा। उसी दिन उसने समय पाकर मणिलाल से एकांत में बात कर दी। उसने कहा, "बाबू मणिलाल! मैं घर का पुराना नौकर हूँ। इस कारण घर की मान-प्रतिष्ठा की चिंता करता रहता हूँ। अब बात कुछ सीमा पार करती दिखाई दे रही है। इस कारण कहने का साहस कर रहा हूँ।"

मणिलाल ने पूछ लिया, "कहो न! क्या कहना चाहते हो?"

"भैया! यह सुंदर और भावना का मेल-जोल घर के सब नौकरों को भला प्रतीत नहीं हो रहा।"

"क्या खराबी मालूम हो रही है उसमें?"

"युवा लड़की और लड़के का मेल-जोल भला नहीं समझा जाता।"

"तुमने उनमें किसी प्रकार की खराबी देखी है?"

"भैया! हम नौकर लोग उधर दृष्टि भी नहीं कर सकते। इस पर भी

हम मनुष्य हैं और हम भी जवान रह चुके हैं। इस कारण ऐसी स्थिति में जो स्वाभाविक बात हो सकती है, वह समझते हैं।''

मणिलाल ने उसे तो यही कहा, ''महाराज! निराधार बातें नहीं की जातीं। अपने से बड़ों की बात परस्पर नहीं करते।''

महाराज तो निराश हो चला गया, परंतु मणिलाल के मन में चिंतन का विषय छोड़ गया। वह यह समझे हुए था कि उसकी बहन ने उसे घर में इसी कारण रखा हुआ है कि उसे वह गोद लेकर पूर्ण संपत्ति का मालिक बना देगी, परंतु गोद लेने की रस्म होने में ही नहीं आती थी। अब महाराज के कहने का प्रभाव उसके मन में यह हुआ कि यदि भावना से विवाह हो जाए तब तो गोद लेने की रस्म की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। तब स्वाभाविक रूप में भावना ही संपत्ति की स्वामिन् होगी और वह उसका पति होने से संपत्ति का भोग कर सकेगा।

इस विचार से वह अगले दिन ही कॉलेज से जल्दी लौट आया और बहन को अकेले देख उसके पास जा पहुँचा। उसने कहा, ''बहन! मैं एक बात जानना चाहता हूँ।''

''हाँ, पूछो?''

''मैं यह समझा था कि तुम मुझे एक दिन गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बना लोगी।''

सेठानी के मन में यह बात थी, परंतु उसने मणिलाल को यह कभी बताई नहीं थी। इस कारण उसने विस्मय प्रकट करते हुए कहा, ''किसी ने तुमको मूर्ख बनाया है।''

''मूर्ख? नहीं बहन! यह मुझे अपने आप ही समझ आया था।''

''तो तुम स्वयं ही मूर्ख बन रहे हो। देखो, मैं बिना सेठजी की इच्छा के किसी को गोद ले नहीं सकती। सेठजी ने पूर्ण संपत्ति भावना को देने का विचार किया हुआ है।''

''पर बहन! लड़की व्यापार कैसे कर सकेगी?''

''उसका घरवाला सब काम करेगा।''

"मैं यदि भावना से विवाह कर लूँ तो मैं मालिक बन जाऊँगा क्या?"

"पर कैसे विवाह कर लोगे?"

"यह मैं उससे निश्चय करूँगा।"

मणिलाल ने समझा था कि वह भावना की वासना को भड़काकर उससे विवाह की स्वीकृति ले लेगा और फिर काम बन जाएगा। इसी विचार से उसने भावना को साथ लेकर जुहू की सैर के लिए जाने की योजना बनाई थी।

अपनी योजना में असफल हो वह अब भावना से बदला लेने की बात विचार करने लगा। उसने रत्नलाल से महाराज वाली बात कह दी। उसने कह दिया, "भैया रत्नलाल! यह सुंदर भावना से बहुत हेल-मेल रखने लगा है।"

रत्नलाल ने मुस्कराते हुए पूछा, "तुमको यह बुरा किस लिए लगने लगा है?"

"मैं स्वयं अपने लिए यत्न करना चाहता हूँ।"

"किस बात का यत्न करना चाहते हो?"

"भावना से विवाह का।"

"पर तुम तो उसके मामा हो। भांजी तो बेटी के समान होती है।"

"भैया! यह सब गए जमाने की बातें हैं। आज नई पीढ़ी के लोग इस प्रकार के पूर्वग्रहों से मुक्त हो चुके हैं।"

"ठीक है। परंतु चाचा और चाची तो नई पीढ़ी के लोग नहीं हैं। तुम कहीं और ध्यान करो। यहाँ तुम्हारा विवाह ठीक नहीं।"

मणिलाल लज्जित और निराश हो अपने कमरे में जा कोई और योजना विचार करने लगा। परंतु रत्नलाल का इसमें एक अपना स्वार्थ था। वह भी सुंदर की घर में बढ़ रही प्रतिष्ठा से संतुष्ट नहीं था। उसके मन में एक अन्य योजना थी। वह भी अपने चाचा की संपत्ति पर वक्र-दृष्टि रखता था। पहले तो वह अपनी किसी लड़के के होने की प्रतीक्षा में था। उसका

विचार था कि लड़के को चाचा-चाची की गोद में देकर स्वयं संपत्ति का स्वामी हो जाएगा, परंतु उसे अपने घर में संतान की प्रतीक्षा करते छः वर्ष से ऊपर हो चुके थे। बहुत से डॉक्टरों की सहायता भी ली जा रही थी, परंतु सफलता मिल नहीं रही थी।

अब उसकी पत्नी सुमित्रा ने एक अन्य योजना उपस्थित कर दी थी। उसने सुझाव दिया था कि उसके भाई की सगाई भावना से हो जाए तो संपत्ति का वास्तविक स्वामित्व हमारा ही हो जाएगा।

यह बात अभी रत्नलाल के मन में ही थी कि मणिलाल ने उक्त बात आकर कही। इससे रत्नलाल को संदेह हो गया कि कहीं वह पीछे ही न रह जाए और चाची अपनी बेटी अपने भाई को ही देने की बात पक्की न कर दे।

इस कारण उसने अगले दिन ही सेठजी से अपने साले का प्रस्ताव कर दिया। सेठजी ने सहज स्वभाव से कह दिया, "भावना अभी विवाह के योग्य नहीं हुई। मैं समझता हूँ कि उसे कम-से-कम बी०ए० तक की पढ़ाई करनी है।"

"पर चाचाजी! तब तक यदि सुंदर से अनुचित संबंध बन गया तो?"

"नहीं बनेगा।"

रत्नलाल चुप कर रहा, परंतु उसने समय पाकर चाची से सुंदर और भावना के विषय में संदेह बता दिया।

इसी बात पर सेठानी ने पति से कहा था कि सुंदर ने भावना से संबंध बना लिया है। इसी पर सेठजी ने सुंदर की देख-रेख तीव्र कर दी थी।

इस दिन खाने के समय घटना ने बात को एक किनारे पर पहुँचा दिया था।

[4]

भावना की बातें सुन सुंदर गंभीर विचारों में डूबा हुआ था। उसने

भावना का पत्नी के रूप में कभी सोचा ही नहीं था। विवाह तो भगवान् के किए से होता है और विवाह से पूर्व सब लड़कियाँ बहिन समान ही होती हैं। यह उसके बाबा का कथन सदा उसके कानों में गूँजता रहता था।

जब वह अल्मोड़ा के अनाथालय में था, तब उसमें अभी यौन-प्रेरणा कुछ प्रबल नहीं हुई थी। अब उस बात को पाँच वर्ष व्यतीत हो चुके थे और अब वह यौवन की प्रेरणाओं को अनुभव भी करने लगा था।

साथ ही बंबई में लड़के-लड़कियों का शृंगार कर घूमना, औरत-मर्दों का परस्पर मेल-जोल कामोत्पादक होता था, परंतु सुंदर में बचपन के संस्कार प्रबल सिद्ध हो रहे थे और वह स्वयं पर नियंत्रण रखता आ रहा था।

सुंदर ने सेठजी को जो पत्र लिखा था, उसे लपेटकर अपनी जेब में रख लिया और भावना से कहा, ''परंतु इन सब बातों से यह कैसे सिद्ध हो गया कि मुझे तुमसे विवाह करना ही चाहिए?''

''पिताजी चाहते हैं।''

''परंतु तुम्हारी माताजी, तुम्हारे मामाजी, नाना, नानी, ताऊ, उनके लड़के रत्नलाल, भाभी सुमित्रा आदि कोई भी तो नहीं चाहता। वे सब मुझसे घृणा करते हैं।''

''मेरे लिए तो पिताजी मुख्य हैं।''

''वे मुख्य अवश्य हैं। इस पर भी विवाह एक ऐसा कार्य है जिसमें पूर्ण परिवार की सहमति आवश्यक है। जब तक सब, कम-से-कम परिवार के मुख्य-मुख्य लोग सहमत नहीं हो जाते, तब तक विवाह नहीं होना चाहिए।''

''वे सब हो जाएँगे। सुंदर! तुम जाओ नहीं। यहीं रहो। समय पाकर सब-कुछ हमारे अनुकूल हो जाएगा।''

सुंदर गंभीर विचार में पड़ गया। वह विचार कर रहा था कि सेठ यादवदेव के परिवार की कृपा के प्रतिकार में, वह इसमें वैमनस्य उत्पन्न कर किसी भी भाँति उचित नहीं कर रहा।

भावना ने सुंदर के हाथ-पर-हाथ रखकर कहा, "मेरा कहा तो तुमको टालना नहीं चाहिए।" इतना कहकर वह सुंदर की आँखों में देखकर बोली, "सुंदर! कुछ समझो।"

यह कहकर वह उसके कमरे से निकल गई। उसके अंतिम वाक्य का अर्थ स्पष्ट था कि वह उससे प्रेम करती है।

अगले दिन भावना सोकर उठी और अपने नित्यकर्म में लग गई। जब बैरा उसके लिए ब्रेक-फास्ट लाया तो बोला, "भावना बीबी! सुंदर ने यह पत्र तुमको देने के लिए कहा है।"

"वह कहाँ है?"

"तो तुमको मालूम नहीं? वह बहुत सवेरे ही रसोईघर में आया था और मुझको यह पत्र देकर बोला, 'भावना बीबी को देना है।'

"मैंने उससे पूछा था कि वह कहाँ जा रहा है? उसने बताया कि सेठजी उसको किसी काम से पूना भेज रहे हैं।

"इतना कहकर वह चला गया। मैंने तो एक साधारण-सी बात समझी थी। किंतु अब घर-भर में यह विख्यात हो रहा है कि सुंदर नौकरी छोड़कर चला गया है। रत्नलाल बाबू कह रहे थे कि उसने चोरी की थी। रात चोरी पकड़ी गई और वह चुपचाप निकल गया है।

"मैंने यह पत्र तुमको देने से पूर्व सेठजी को दिखाया था। वे एक ऐसे ही कागज पर लिखा और ऐसे ही लिफाफे में बंद पत्र खोलकर पढ़ रहे थे। उन्होंने पत्र को लिया। इसी प्रकार बंद ही इसको देखा और कहा, 'यह भावना के लिए है, उसे दे दो।'

"मैंने कहा, 'सेठजी! यह सुंदर ने दिया है। मैंने सोचा कि आपके देखे बिना भावना बीबी को नहीं देना चाहिए।'

" 'क्यों?' सेठजी ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा।

" 'मैंने थथलाते हुए कहा, 'रत्नबाबू कहते हैं कि वह चोर और बदमाश था।'

" 'सत्य?'

"'जी हाँ। मैं अपनी कसम खाकर कहता हूँ कि वे सभी नौकरों को ऐसा ही कह रहे हैं।'

"उन्होंने कहा, 'जाओ, यह पत्र भावना बीबी को दे दो।'

भावना की आँखें तरल हो रही थीं। इस पर बैरा ने पूछा, "बीबी! क्या बात है?"

"तुमने उसको चोरी करते देखा है?" आवेश में भावना ने पूछा।

"बीबी! माफ कर दो। मुझसे तो रत्नलाल बाबू ने कहा था। इसलिए मैंने सोचा, सेठजी को बता दूँ।"

इस समय तक वह नाश्ते को तिपाई पर रख चुका था और बिना कुछ और अधिक कहे कमरे से बाहर हो गया। भावना ने नाश्ता करने से पूर्व सुंदर का पत्र पढ़ना आरंभ किया। उसमें लिखा था—

"भावना बहन!

"मैंने तुम्हारी सब बातों पर रात-भर मनन किया है और अंत में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मैं तुम्हारा भाई बनकर ही तुम्हारे अहसानों का प्रतिकार भली-भाँति दे सकता हूँ। इस समय तो मैं एक अति निर्धन भाई हूँ, परंतु परमात्मा ने कभी सामर्थ्य प्रदान किया तो फिर बहन की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहूँगा।

"मैं तुम्हारे तथा तुम्हारे माता-पिता के स्नेह का यही प्रतिकार समझता हूँ कि इस समय चुपचाप, बिना किसी को बताए यहाँ से चला जाऊँ। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं कृतघ्न हूँ। इसका अर्थ केवल यह निकलता है कि मुझको इसमें ही आप सबका कल्याण प्रतीत हुआ है।

"बहन! सदा सुखी रहो। यही मेरी भगवान् से प्रार्थना है!"

पढ़ते-पढ़ते भावना की आँखों से आँसू गिरने लगे। पत्र की अन्तिम पंक्तियाँ उसे धुँधली प्रतीत होने लगी थीं।

वह पुनः अपने पलँग पर जाकर लेट गई। नाश्ता करने तथा स्कूल जाने का उसे तनिक भी ध्यान नहीं रहा। वह सुंदर के पिछले पाँच वर्ष के व्यवहार और जीवनचर्या पर विचार कर रही थी। वह सोचती थी कि जब

उसे उसने अल्मोड़ा में बस के अड्डे पर कुली का काम करने के लिए तैयार देखा था तो वह कितना सुंदर प्रतीत होता था, और जब उसके पिता ने उसको नौकर रखने के लिए कहा था, कैसे वह मन में इच्छा कर रही थी कि वह कहीं उनकी नौकरी करने से इनकार न कर दे।

इसका अर्थ भावना को यह समझ आ रहा था कि उस पहली दृष्टि में ही वह उससे प्रेम करने लगी थी। आज अपने मन में भावों का विश्लेषण कर वह पहली ही नजर में प्रेम का अर्थ समझ रही थी। उस समय वह अभी नौ वर्ष की थी और न तो प्रेम का अर्थ समझती थी और न ही विवाह, प्रणय आदि कुछ जानती थी। उस समय की मन की अवस्था का अर्थ वह आज भली प्रकार समझ सकी थी।

वह यह समझती थी कि सुंदर को पढ़ाया करेगी। परंतु दो वर्ष में ही वह इतना पढ़ गया था कि उसकी भूलों को सुधारने लगा था और अब तो वह किसी भी ग्रेजुएट से कम अंग्रेजी और अन्य विषयों का ज्ञान नहीं रखता था। पाँच वर्ष में इतनी उन्नति उसकी प्रतिभा-विशेष की ही सूचक थी।

साथ ही वह कितना निष्ठावान है, जो एक लखपति का, अपनी लड़की से उसका विवाह मान जाने पर भी, अपने विचार में, उनके परिवार के कल्याण की भावना से प्रेरित, सब-कुछ त्याग कर जा रहा है।

वह इस प्रकार अपने विचारों में लेटी हुई छत की ओर देख रही थी कि सेठ उसके कमरे में आया और उसको, हाथ में सुंदर का पत्र लिए पलँग पर लेटे देख, विस्मय में खड़ा रह गया। तत्पश्चात् एकाएक बोला, "भावना! स्कूल का समय हो गया है, बेटी!"

"मैं आज स्कूल नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?"

"चित्त नहीं करता।" इतना कह उसने पिता की ओर से अपना मुख फेर लिया। पिता उसके पलँग पर बैठ, उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए पूछने लगा, "बहुत प्यार हो गया है उससे?"

भावना ने वह पत्र, जो अभी भी उसके हाथ में था, पिताजी की ओर

कर दिया। सेठ ने पत्र लेकर पढ़ा। पढ़कर उसने कहा, "देखो भावना! मैं तो तुम्हारे लिए अपने परिवार की अवहेलना करने के लिए भी तैयार था। परंतु पराए लड़के पर तो मेरा अधिकार नहीं है। इस पर भी मैं तुमको वचन देता हूँ कि मैं उसको ढूँढ निकालूँगा और उस पर अपनी दृष्टि रखूँगा। समय व्यतीत होने पर, आशा करनी चाहिए कि सब-कुछ ठीक हो ज़ाएगा।

"परंतु तुम इसमें मेरी सहायता करो। उठो, पढ़ो-लिखो और स्वयं को उसके योग्य बनाने का यत्न करो। एक बात समझ लो, वह व्यक्ति धन-दौलत की कुछ भी परवाह नहीं करता। वह चरित्रवान्, प्रतिभाशाली युवक है। वैसे ही तुम भी बन सको तो कुछ आशा की जा सकती है।"

[5]

सुंदर रात-भर विचार करने के पश्चात् भी अपने निर्णय को बदल नहीं सका। वह मन में सोचता था कि यदि उसके विवाह का संयोग भावना से है, तो उसके घर छोड़कर चले जाने पर भी हो जाएगा।

साथ ही वह समझता था कि घर के नीच नौकर से सेठ का दामाद बनने में बहुत अंतर है। इतनी ऊँचाई पर यदि एक ही छलाँग में चढ़ने का यत्न करेगा तो अवश्य गिरकर अंग-भंग कर लेगा। पहले उसको स्वतंत्र रूप में किसी मानयुक्त स्थिति पर पहुँचना चाहिए, तब यदि कोई भावना जैसी लड़की उससे विवाह की बात करे, तो यह प्रस्ताव विचारणीय हो सकता है।

जब भावना अपने भाव प्रकट कर उसके कमरे में से चली गई तो उसने सेठजी का पत्र जेब से निकाला और नीचे हस्ताक्षर कर उसे एक बार पुनः पढ़ा और पत्र के नीचे यह और लिख दिया कि—

"मुझे भावना ने बताया है कि आप मुझ पर इतने दयालु हैं कि मुझको अपने परिवार में सम्मिलित करने का विचार रखते हैं। मैं स्वयं को इतनी बड़ी दया का पात्र नहीं समझता। अंग्रेजी की कहावत है—डिज़र्व बिफोर डिजायर—अर्थात् किसी वस्तु को पाने से पूर्व उसको प्राप्त करने

की योग्यता ग्रहण करो। वह योग्यता मैं अभी स्वयं में नहीं देख पाता।''

इतना लिख उसने एक पत्र भावना को भी लिख दिया। दोनों पत्रों को बंद कर उसने समय देखा। प्रातः के चार बज रहे थे। वह शौचादि से निवृत्त हो, दोनों पत्र लेकर, अपने कमरे को बंद कर बाहर निकल आया। रसोईघर में गया तो बैरा अपने लिए चाय बना रहा था। उसने बैरे को पत्र देकर कहा, ''यह पत्र भावना बहन को दे देना।''

बैरे ने इतने प्रातःकाल उसको जाने के लिए तैयार देखा तो पूछ लिया, ''तुम कहाँ जा रहे हो?''

''सेठजी किसी काम से मुझे पूना भेज रहे हैं।''

बैरा अभी उसकी बात पर विचार ही कर रहा था कि सुंदर वहाँ से चला आया। घर के नीचे फाटक पर चौकीदार बैठा रामायण की चौपाई गा रहा था। उसने चौकीदार से कहा, ''भैया! यह पत्र सेठजी को दे देना। इस समय वे पूजा कर रहे हैं नहीं तो मैं स्वयं ही दे देता।''

''तुम कहाँ जा रहे हो, सुंदर?''

''किसी काम से पूना जा रहा हूँ।''

वहाँ से निकलकर सुंदर मैरीन ड्राइव की ओर चल पड़ा। अभी बस इत्यादि नहीं चल रही थीं। सड़कों पर चलने-फिरनेवाले भी अभी अपने घरों से नहीं निकले थे। पटरी पर सोनेवाले दिन निकलने की प्रतीक्षा में करवटें बदल रहे थे।

बंबई के ऊँचे-नीचे मकान प्रातःकाल के घुसमुसे प्रकाश में सुनसान भूतों के समान खड़े दिखाई दे रहे थे। सुंदर इस विशाल नगर के लाखों लोगों के बीच स्वयं को सर्वथा अकेला पा रहा था। वह चला जा रहा था और कोई उसकी ओर देख भी नहीं रहा था।

एक ने देखा। वह था पुलिसवाला। मैरीन ड्राइव पर पहुँच वह समुद्र की ओर बनी मुँडेर के समीप जाकर, उस धुँधले प्रकाश में सागर में हो रही उथल-पुथल को देखने के लिए खड़ा हो गया। वह अभी विचार कर रहा था कि एक पैसा भी लेकर वह चला नहीं, अब निर्वाह किस प्रकार

किया जाए? न जाने उसको कब और किस प्रकार का काम मिले! तब तक वह रहेगा कहाँ और क्या खाएगा?

वह अभी एक भी प्रश्न का हल नहीं सोच सका था कि पीछे से किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा। उसने चौंककर घूमकर देखा तो पीछे पुलिसवाले को खड़े पाया।

सुंदर ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा तो पुलिसमैन ने पूछा, "यहाँ क्या कर रहे हो?"

"दिल और दिमाग की सुस्ती निकाल रहा हूँ।"

"तुम चोर मालूम होते हो, तलाशी दो।"

"न दूँ तो?"

सुंदर ने इस प्रकार कहे जाने को मजाक समझा था। परंतु वह काँप गया जब उसने कहा, "तो तुमको पकड़कर थाने ले जाऊँगा।"

इस पर सुंदर को क्रोध चढ़ आया और उसने कहा, "तो ले चलो।"

पुलिसमैन ने उसे बाँह से पकड़कर कहा, "चलो।"

"चलूँ क्यों? ले चलना चाहते हो तो ले चलो।"

पुलिसमैन ने जेब से सीटी निकाल बजानी आरंभ कर दी। पटरी पर सोए लोग जाग पड़े। दूर से दो और कांस्टेबल सीटी की आवाज सुन भागते हुए आए। उन्होंने पूछा, "क्या हुआ है?"

"यह चोर है।"

"तो ले चलो थाने।"

"यह अपने आप चल नहीं रहा है।"

अब सुन्दर की समझ में आया कि यह तो व्यर्थ में ही बवाल खड़ा हो गया है। उसने शान्ति से पूछा, "तुम यह किस प्रकार कहते हो कि मैं चोर हूँ?"

"तो तुम असमय में यहाँ क्या कर रहे हो?"

"भाई, दिन चढ़ आया है। घर से घूमने निकला हूँ।"

"कहाँ रहते हो?"

इस प्रश्न से तो सुन्दर घबराया। वह सेठजी का पता देना नहीं चाहता था। इस कारण चुप कर रहा। इस पर दो नए आए सिपाहियों ने भी सुन्दर का हाथ पकड़ लिया और एक उसकी गर्दन पर हाथ रख उसे धकेलने लगा।

सुन्दर को वे थाने में ले गए और वहाँ ले जाकर उसके हाथों में रस्सा बाँध; उसको लोहे की सलाखों वाले कमरे में धकेल दिया गया। कमरे में चार-पाँच और भी बन्दी थे। कमरे के कोने में एक पेशाब कर रहा था। कमरे में पेशाब की दुर्गन्ध भरी हुई थी। सुन्दर अभी भी विचार कर रहा था कि सेठजी का पता बताए अथवा नहीं। इस बीच सिपाही ने दरवाजा बन्द किया और दफ्तर में रिपोर्ट लिखाने चला गया।

दिन के ग्यारह बजे। हवालात का दरवाजा खुला और उसको अन्य बंदियों के साथ निकालकर थानेदार के सामने उपस्थित किया गया। सुन्दर सबसे पीछे खड़ा था और सब बंदियों से पूछे जानेवाले प्रश्न और उनके उत्तर सुन रहा था।

एक आँख का काना और टेढ़े मुखवाला व्यक्ति सबसे आगे था। उसको देखकर थानेदार मुस्कराया। वह बन्दी भी खिलखिलाकर हँस पड़ा। हँसते समय उसका मुख अति भयंकर दिखाई देता था।

"तो तुम घर पर आराम से नहीं बैठ सकते?" थानेदार ने पूछा।

"हुजूर! घरवाली घर बैठने दे तो बैठूँ।"

"क्या कहती है वह?"

"वह पाँच रुपए रोज माँगती है। बताइए, मैं कहाँ से दूँ?"

"ओ पटवर्द्धन!" उसने सिपाही को आवाज दी और कहा, "इसको दलेल दो।"

एक हृष्टपुष्ट सिपाही आगे बढ़ा, बन्दी को पकड़कर साथ के कमरे में ले गया। थानेदार ने दूसरे बन्दी को देखकर पूछा, "क्या नाम है?"

"शेरा।"

"पाँच सौ का मुचलका भरो।"

अब तीसरा आदमी आया। थानेदार ने उसको देख माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा, "तुम फिर आ गए हो?"

"हुजूर! जबरदस्ती पकड़ लिया गया हूँ। मैं तो सदा खिदमत के लिए हाजिर रहता हूँ।"

"अच्छा, इस साथ वाले कमरे में चले जाओ।"

इस प्रकार तीन-चार और बन्दियों का निपटारा कर सुन्दर की बारी आई। उसको देख थानेदार ने सिपाही से कहा, "यह तो कोई नया पक्षी दिखाई देता है?"

"हाँ, हुजूर!"

"क्यों पकड़े गए हो?" उसने सुन्दर से पूछा।

"नहीं जानता, साहब!"

"इसकी रिपोर्ट लाओ।" उसने सिपाही से कहा।

पुलिसवाला दफ्तर से एक रजिस्टर उठा लाया। उसमें लिखा था—सुन्दर, पुत्र साधू, रहनेवाला गढ़वाल का, मैरीन ड्राइव पर सन्देहात्मक स्थिति में पकड़ा गया।

थानेदार रिपोर्ट पढ़ माथे पर त्यौरी चढ़ा, पुलिसवाले से बोला, "हराम....यह भी नहीं जानते कि रिपोर्ट किस प्रकार लिखी जाती है?"

पुलिसमैन सम्मानयुक्त मुद्रा में सामने खड़ा रहा। इस पर थानेदार ने कुछ विचारकर सुन्दर से पूछा, "कोई वाकफियत दे सकते हो?"

इस पर सुन्दर अपने सेठ का नाम बताने के लिए विवश हो गया। थानेदार ने उसी समय सेठ को टेलीफोन पर पूछा, "सेठ यादवदेव जी हैं क्या?"

"मैं बोल रहा हूँ।"

"आप किसी सुन्दर नाम के व्यक्ति को जानते हैं।"

"हाँ, क्या हुआ है उसको?"

"वह सन्देहात्मक रूप में मैरीन ड्राइव पर घूमता हुआ पकड़ा गया है। मैं एन०सी० पांडे एस०एच०ओ० बोल रहा हूँ।"

"देखिए, वह हमारा विश्वस्त कर्मचारी है। हम उसको प्रातःकाल से ही ढूँढ रहे हैं। उसे छोड़ दीजिए। मैं अपना एक आदमी भेजता हूँ, आप उसको उसके साथ कर दीजिएगा।"

थानेदार ने सुन्दर को कहा, "सामने बैंच पर बैठ जाओ।"

सुन्दर के हाथ का रस्सा खोल दिया गया। वह बैंच पर बैठ गया। उसका विचार था कि सेठजी स्वयं आएँगे और उसको समझा-बुझाकर वापस ले जाएँगे। वह मन में विचार कर रहा था कि किस प्रकार उनसे छुट्टी माँगेगा। उसको सेठजी के घर से निकलते ही पकड़े जाने पर बहुत लज्जा लग रही थी और वह कोई उपाय नहीं सोच पा रहा था। आज के अनुभव के पश्चात् वह यह भी नहीं समझ सका कि जेब में बिना एक भी पैसे के वह निर्वाह किस प्रकार कर सकेगा?

लगभग आधे घंटे की प्रतीक्षा के पश्चात् एक प्रौढ़ावस्था का व्यक्ति धोती, कुरता, कोट, काली टोपी तथा चप्पल डाले हुए थाने में आया और जेब में से एक पत्र निकालकर थानेदार को देते हुए उसने कहा, "मुझे सेठ यादवदेवजी ने भेजा है।"

"ओह! वह आपका आदमी बैठा है।"

वह आदमी सुन्दर के पास बैंच पर आया और बोला, "तुम ही सुन्दर हो? चलो, मुझे सेठजी ने भेजा है।"

सुन्दर समझ गया कि सेठजी ने मिल का कोई कर्मचारी भेजा है। वह उठकर उस व्यक्ति के साथ चल पड़ा। थाने से निकलते हुए उस आदमी ने पूछा, "तुम तो पूना जा रहे थे?"

सुन्दर ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। थाने के बाहर सेठजी की गाड़ी खड़ी थी। उस आदमी ने मोटर के पास खड़े होकर कहा, "मेरा नाम मोहनदास गांधी है। सेठजी ने कहा कि तुम्हारे वेतन के हिसाब में ये रुपये जमा हैं। तुम इनको रख लो।"

इतना कह मोहनदास ने नोटों का एक बण्डल अपने पोर्टमैण्ट्यू में से निकालकर सुन्दर के हाथ में देते हुए कहा, "इनको भीतर की किसी जेब

में रख लो और सुनो, सेठजी का कहना है कि तुम पूना चले जाओ। वहाँ कोई काम मिल जाएगा। और कभी किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो उनको लिख देना। अच्छा, अब तुम जाओ।"

बिना गिने ही सुन्दर ने नोटों का बण्डल अपनी जेब में रख लिया और रेलवे स्टेशन जाने के लिए एक गाड़ी कर उसमें सवार हो गया। वह अभी गाड़ी में बैठा ही था कि थाने के दरवाजे पर खड़ा एक अन्य व्यक्ति, जो कुलियों के-से कपड़े पहने हुए था, एक अन्य गाड़ी में बैठ सुन्दर की गाड़ी के पीछे-पीछे चल पड़ा।

मोहनदास जब मिल में पहुँचा तो सेठ ने पूछा, "क्या करके आए हो?"

"उसको छुड़ाकर रुपये दे, पूना का रास्ता दिखा आया हूँ।"

"और माधव?"

"वह भी दूसरी गाड़ी में बैठकर उसके पीछे चल दिया है।"

"ठीक है।"

[6]

भावना आज स्कूल नहीं गई थी। उसकी माँ इस पर उससे पूछने आई कि उसका स्वास्थ्य तो ठीक है। भावना को इस घटना से ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी माँ का बहुत दिनों से कुम्हलाया हुआ मुख आज खिल उठा है। माँ के पूछने पर भावना ने केवल इतना ही कहा, "माँ, मैं ठीक हूँ।"

"तो स्कूल क्यों नहीं गई?"

"छुट्टी करने के लिए मन किया है।"

मध्याह्न का भोजन करने सेठजी घर आए तो भावना ने एकान्त में पिताजी से पूछ लिया, "कुछ पता चला है, पिताजी!"

"हाँ बेटी! वह सड़कों पर बेमतलब घूम रहा था। अतः पुलिस ने उसे सन्देह में पकड़ लिया। थाने से उसके विषय में पूछताछ के लिए फोन

आया तो मैंने मोहनदास को भेजकर छुड़ा दिया और उसके शेष वेतन का रुपया जो उसने लिया नहीं था, उसके पास भेज दिया है। एक मिल के कर्मचारी को उसके पीछे लगा दिया है। वह उससे स्वतन्त्रता से मित्रता उत्पन्न करेगा और फिर उसका पथ-प्रदर्शन करेगा। मैं उसे अपने एक एजेण्ट नानूभाई सेवामल की दुकान पर नौकर करा दूँगा। तत्पश्चात् हम देख लेंगे। तब तक तुमको खूब दिल लगाकर पढ़ना चाहिए।''

रात के समय सेठ साहब खाना खाने आए तो रत्नलाल और उसकी पत्नी सुमित्रा भी आ गए। मणिलाल तो पहले ही बैठा था।

सेठजी ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया और खाना परोसा जाने लगा। रत्नलाल से चुप नहीं रहा गया। भोजन करते हुए उसने कह दिया, ''चाचाजी! अपने और पराए में अन्तर पता चला कि नहीं?''

''चल गया है।''

''पहाड़िये मीत किसके, भात खाया और खिसके।''

सेठजी ने मुस्कराकर कहा, ''रत्नलाल! सरकारी अफसरों में असभ्यता क्यों घुस आती है?''

''किसमें असभ्यता आ गई है?''

''तुममें। तुमने नौकरों को यह बताया है कि सुन्दर चोरी करके भाग गया है। कौन-सी वस्तु चुराकर ले गया है वह?''

''ओह! तो अभी भी उसका जादू सिर पर सवार है?''

''हाँ; और मैं तुमको कह देता हूँ कि एक सप्ताह के अन्दर अपने रहने का कहीं प्रबन्ध कर लो, अन्यथा इस घर का द्वार तुम्हारे और तुम्हारी बहू के लिए बन्द होनेवाला है।''

''सत्य?''

''हाँ, तुम जैसे अभिमानी, झूठे और मूर्ख के लिए न तो यहाँ रहने को स्थान है और न ही इस मेज पर खाने को अन्न।''

रत्नलाल ने खाना छोड़ दिया और कहा, ''आज ही से बन्द क्यों नहीं कर देते?''

"इसलिए कि मैं तुम जैसा असभ्य नहीं हूँ।"

"चाचाजी! मैंने भावना को गन्दी नाली में गिरने से बचाया है। यही अपराध है न मेरा?"

"यह तो भविष्य बताएगा। मेरा तुमसे झगड़ा इस कारण नहीं। तुमने कल झूठे अभिमान का प्रदर्शन किया था। आज तुमने असत्य भाषण किया है और अब तुम सुन्दर के चले जाने पर अपनी बहादुरी प्रकट कर मूर्खता प्रकट कर रहे हो। इसका भावना से उसका विवाह होने अथवा न होने का किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारे गुण तो एक पृथक् वस्तु हैं।"

"मेरे गुणों का ज्ञान आपको कुछ दिन पश्चात् होगा।"

"तब तुमसे क्षमा माँग लूँगा और तुम्हारे साथ वर्तमान व्यवहार के लिए दण्ड भर दूँगा।"

रत्नलाल और सुमित्रा दोनों डाइनिंग हॉल से निकल गए। मणिलाल भी खाना छोड़ चाचा-भतीजे की बातें सुन रहा था। जब रत्नलाल गया तो वह भी अपने स्थान से उठकर खड़ा हो गया। सेठजी ने उसे खाना छोड़ते देखा तो कह दिया, "बरखुरदार! तुम भी जाना चाहते हो तो चले जाओ। अपनी बहिन से पूछ लेना कि वह तुम्हारा बम्बई में कहीं प्रबन्ध कर सकती हैं अथवा नहीं।"

इस पर सेठानी ने मणिलाल को डाँट दिया। उसने कहा, "मणि! बैठो, खाना खाओ।"

मणिलाल समझ गया और बैठ गया।

अगले दिन माधवराव पूना से लौट आया और सेठजी के सामने हाथ जोड़ क्षमा माँगते हुए कहने लगा, "सेठजी! वह मुझे धोखा दे गया है। कह नहीं सकता कि उसने क्या समझा। मेरा विचार है कि मुझसे पृथक् होने के लिए वह किसी रास्ते के स्टेशन पर उतर गया है।

"हुजूर! जब मोहनदास उसको बता रहा था तो मैं समझ गया कि मुझे किसके साथ रहना है। जब उसने विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन तक जाने के लिए घोड़ागाड़ी की तो मैंने भी कर ली। सेठजी! लड़का बहुत ही

समझदार है। उसने टिकट लेने के लिए रुपए टिकटघर के सामने नहीं निकाले। स्टेशन पर पहुँच, वह पेशाबघर में चला गया। लगभग पाँच मिनट के पश्चात् वह वहाँ से निकला। उसने पूना का थर्ड क्लास का टिकट लिया तो मैंने भी वहीं का टिकट ले लिया। मैं उसके पीछे-पीछे उसी डिब्बे में जा बैठा जिसमें वह बैठा था।

''गाड़ी में बैठ जाने के पश्चात् उसने मेरी ओर घूरकर देखा। मैंने बीड़ी निकाली और सुलगाने के लिए उससे माचिस माँगने लगा। वह सिगरेट-बीड़ी नहीं पीता था। इस कारण बोला, 'माचिस नहीं है।'

''मैं गाड़ी से उतरकर उससे बोला, 'मेरे स्थान का ध्यान रखना, मैं माचिस लेकर आता हूँ।'

''मैं माचिस लेकर वहीं आ बैठा। बीड़ी पीते हुए उससे बात आरंभ करने के लिए पूछने लगा, 'बाबू! पूना जा रहे हो?'

'हाँ।' उसने संक्षेप में कहा।

'आप क्या वहीं रहते हैं?' मैंने उससे बिल्कुल अनभिज्ञता प्रकट करते हुए पूछा।

''उसने विस्मय में मेरे मुख पर देखा और फिर मुस्कराकर बोला, 'नहीं, वहाँ किसी काम के लिए जा रहा हूँ।'

''मैंने हँसकर कहा, 'परंतु लोग तो काम ढूँढने बंबई आते हैं?'

'बंबई की जलवायु मेरे अनुकूल नहीं बैठी।'

'चाय कम पीते होंगे। चाय के बिना तो यहाँ कोई जी नहीं सकता।'

'मैं चाय नहीं पीता।' उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

'सिगरेट नहीं पीते, चाय नहीं पीते, शराब तो आजकल बिकती ही नहीं; तो फिर जीते कैसे हो? तभी तो जलवायु अनुकूल नहीं बैठी। हाँ, पूना बंबई से अच्छा नगर है। वहाँ पेट ठीक रहेगा। मैं पूना का ही रहनेवाला हूँ। आप कहाँ ठहरनेवाले हैं वहाँ जाकर?'

''इस पर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, 'मैं तो परदेसी हूँ। कह नहीं सकता कि कहाँ ठहरूँगा। मुझको इसकी चिंता भी नहीं है।

सड़क के किनारे सो रहूँगा। जब कोई स्थान मिल जएगा तो रहने का स्थान भी ढूँढ लूँगा।'

"मैंने उससे कहा, 'बाबू! पटरियों पर सोना तो कुलियों के लिए ठीक हो सकता है, परंतु आप जैसे सफेदपोशों के लिए तो यह ठीक नहीं है। कोई सफेदपोश पटरी पर सोया मिल जाए तो पुलिस समझती है कि कोई जेबकतरा है। ऐसा मत करना, बाबू!'

"फिर मैंने कुछ काल तक उसका मुख देखकर कहा, 'आप मेरे साथ चलिए। जब नौकरी लग जाएगी तो रहने के लिए भाड़ा दे देना।'

'इससे आपको बहुत कष्ट होगा।'

'नहीं, कष्ट की कोई बात नहीं। मेरे पास एक मकान है। बाप-दादाओं का बनाया है। उसमें एक कोठरी आपको दे दूँगा। और देखो, बाबू! मैं आपके काम-धंधे के लिए भी मदद कर सकता हूँ। हमारे सेठ हैं। उनकी कपड़े की बहुत बड़ी दुकान है। उनसे कहूँगा तो निश्चय ही वे कुछ-न-कुछ आपके लायक काम निकाल लेंगे।'

"इससे वह गंभीर विचार में पड़ गया और उसने मेरी बात का कुछ उत्तर नहीं दिया। गाड़ी चल पड़ी थी और खटाखट भागने लगी थी। वह सीट के साथ पीठ लगाकर आँखें मूँद बैठ गया। मेरा विचार था कि वह सो गया है। मैं भी यह समझ कि परिचय घनिष्ठ हो गया है, शेष पूना चलकर हो जाएगा, आराम करने लगा। मुझको इसमे झपकी आ गई। पंखे चल रहे थे, ठंडी हवा लगी तो नींद आ गई।

"मेरी नींद शिवुपरी रोड स्टेशन पर, गाड़ी खड़ी होने पर खुली और जब मैंने आँखें खोलकर देखा तो वह लड़का अपनी सीट पर नहीं था। मैंने पहले अपना सारा डिब्बा देखा और उसके पश्चात् सारी गाड़ी का एक-एक डिब्बा छान मारा, किंतु उसका कहीं पता नहीं चला। मार्ग में गाड़ी कहीं खड़ी नहीं होती थी। वह किस प्रकार उतरा और कहाँ गया, इसका कुछ पता नहीं चल सका।

"मैं पूना तक उसी गाड़ी में गया। सब उतरनेवाले यात्रियों को एक

बार पुनः देखा, किंतु उसका पता नहीं चला। मैं निराश लौट आया हूँ।''

सेठजी ने कहा, ''तुम महामूर्ख हो। गार्ड से पूछना था, गाड़ी कहीं बेकायदा तो नहीं रुकी थी। जिस स्टेशन पर खड़ी हुई थी, वहीं जाकर पता करना चाहिए था।''

माधवराव अपनी भूल पर लज्जित हाथ जोड़े खड़ा था। सेठजी ने कुछ विचारकर कहा, ''जाओ, आज फिर पूना चले जाओ और उसको ढूँढने का यत्न करो। वह पुनः किसी दूसरी गाड़ी से पूना चला गया होगा। वहाँ दो-तीन दिन ढूँढने का यत्न करो।

''देखो, अब उसके पास रुपए हैं। वह पटरी पर नहीं सोएगा। तुमने उसको डरा दिया है। वह किसी धर्मशाला अथवा किसी होटल में ठहरेगा और दुकान-दुकान पर काम ढूँढता फिरेगा।''

इस प्रकार माधव को पुनः पूना भेज, सेठ अपने काम में लग गया। रात को जब सेठ ने भावना को माधव की घटना सुनाई तो उसका मुख उतर गया। उस रात सेठ यादवदेव की अपनी पत्नी से खुलकर बातचीत हुई। सोने से पूर्व भावना की माँ ने कह दिया, ''भावना के सामने सुंदर की बात बार-बार कर उसके मन को दुःखी करने से क्या लाभ है। वह अच्छा था अथवा बुरा, अब इस बात से कुछ मिलनेवाला नहीं है। इसको भूल जाने दीजिए। अन्यथा भय है कि कहीं जीवन-भर के लिए वह उसके मोहजाल में फँसी न रह जाए।''

''मैंने कल उसको कहा था कि उसकी सूचना देता रहूँगा। अब मेरा विचार है कि उसको ढूँढ निकालना अति कठिन है। इस पर भी उसके विचार से भावना पढ़ने-लिखने में मन लगा सकेगी तो लाभ ही होगा।''

''पर मैं चाहती हूँ कि हमको अब उसकी सगाई कर देनी चाहिए और अगले वर्ष उसका विवाह हो जाना चाहिए।''

''वह अभी बहुत छोटी है। बीस वर्ष की आयु से पूर्व उसका विवाह नहीं होना चाहिए।''

''यदि सुंदर यहाँ होता, तब तो शीघ्र ही उसका विवाह हो जाता।''

"यह तुमको किसने कहा है? देखो राधा! भावना का विवाह मणिलाल से अथवा रत्नलाल के साले से नहीं होगा।"

"मैं यह नहीं कह रही हूँ। मैं तो यह विचार कर रही हूँ कि हमें अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी ढूँढना है। यदि मरने से पहले भावना के घर कोई लड़का हो जाए तो हमारी यह समस्या सुलझ जाएगी।"

"वह तो मैं सुलझा चुका हूँ। मैं अपनी मिल अपने जीवन-काल में बेच दूँगा और सब धन का एक ट्रस्ट बना जाऊँगा।"

"किस बात का ट्रस्ट बनाएँगे?"

"यह विचार कर रहा हूँ। मैं किसी ऐसे काम के लिए ट्रस्ट बनाना नहीं चाहता, जिस पर सरकार का किसी प्रकार का भी अधिकार हो सके।"

"आप अपने गाँव में एक सुंदर लक्ष्मीनारायण का मंदिर बनवा दीजिए।"

सेठ हँस पड़ा। वह बोला, "आज की सरकार तो मंदिरों में भी हस्तक्षेप करने लगी है। उनके ट्रस्ट भंग कर उनके लिए कानून बनाने लगी है।"

"यह तो घोर अन्याय हो रहा है।"

"देवीजी! यह कलियुग है। श्रीभागवत् में तो महर्षि पहले ही लिख गए हैं कि कलियुग के राजा व्यापार करने लगेंगे। सो वह अब होने लगा है। व्यापार के लोभी राजा, जहाँ कहीं भी धन दिखाई देता है, उसे अपने अधीन करने का यत्न करते हैं। मंदिरों में भक्तजनों का श्रद्धा-भक्ति से लगाया धन, पुजारी जहाँ अपने सुख-भोग के लिए प्रयोग करने लगे हैं, वहाँ सरकार राज्य-कर्मचारियों के उदरस्थ करने लगी है।"

"तो क्या करेंगे?"

"बताया तो है कि अभी कुछ समझ में नहीं आ रहा है। यह धन मैंने अपने परिश्रम से कमाया है। दिन में पंद्रह-सोलह घंटे काम कर, मितव्ययिता से जीवन-यापन कर और बुद्धि का प्रयोग कर पाँच सौ रुपयों

की पूँजी से यह कपड़ा-मिल बनाई है। अब देश-भर में अपने कपड़े की दुकानें खोल ली हैं। रुपया आने लगा तो सरकार ने टैक्स बढ़ा दिया। वह देकर भी मैंने उन्नति की है। इस पर सरकार ने मजदूरों के विषय में ऐसे कानून बना दिए, जो मिल के प्रबंधकों को व्यर्थ के झगड़े में डालनेवाले हैं। इनको भी मानता हूँ। भगवान् की कृपा है कि इस पर भी मेरी आय दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। मेरी मिल में कर्मचारियों को सब कारखानों से अधिक वेतन मिलता है, इस पर भी कर्मचारी हड़ताल करते हैं। व्यर्थ के झगड़े करते हैं और जहाँ इनके पक्ष में कोई उल्टी-सीधी युक्ति मिल जाए तो अधिकारी हमारे सिर पर कूदने लगते हैं।

''इस पर भी मुझको लाभ ही रहता है। अब राज्य समाजवाद का बहाना बनाकर कारखानों का मालिक स्वयं बनना चाहता है।

''इसी कारण मैं कोई ऐसा उपाय विचार कर रहा हूँ जिससे राज्य के सब नियमों का पालन करते हुए, जो कुछ भी मेरे पास बच जाता है, उसका मैं अपनी इच्छा से प्रयोग कर सकूँ।''

''यह सब बेकार है जी! हमारे मरने तक कुछ बचेगा अथवा नहीं, कौन कह सकता है? आप एक बात कीजिए। अपने धन को दान-दक्षिणा में दे दीजिए। कुछ मुझको दे दीजिए, कुछ भावना को। इसी प्रकार कुछ मणिलाल के नाम और कुछ रत्नलाल के नाम कर दीजिए।''

इससे सेठजी आवेश में आकर कहने लगे, ''इन संबंधियों को देना तो सरकार के हाथ में देने से भी अधिक पापमय होगा। सरकार को मैं क्यों नहीं देना चाहता, तुमको बताया है। मेरा धन सरकार मेरी इच्छानुसार व्यय नहीं करेगी। परंतु क्या ये रत्नलाल इत्यादि मेरी इच्छानुसार ही व्यय करेंगे? सरकार तो फिर भी किसी के लाभ में व्यय करेगी, परंतु ये तो वेश्यागमन, जुआ तथा शराब-पार्टियों में ही सब-कुछ स्वाहा कर देंगे।

''नहीं, मैं इनको अपना कमाया हुआ धन कभी नहीं दूँगा।''

तृतीय परिच्छेद

[1]

सुंदर जब घोड़ागाड़ी में सवार हो विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन की ओर चला तो उसने देखा कि एक व्यक्ति, मजदूरों के-से कपड़े पहने हुए, थाने के समीप दीवार का आश्रय लिए खड़ा है। जब वह एक घोड़ागाड़ी में सवार हुआ तो उसने देखा कि वह भी एक अन्य गाड़ी को संकेत से बुला सवार हो गया। इससे सुंदर को संदेह हो गया कि उस व्यक्ति को पता चल गया है कि उसके पास नोटों का बंडल है। कदाचित् उससे रुपए छीनने की लालसा से, वह उसके पीछे-पीछे आ रहा है।

कुछ दूर जाकर सुंदर ने घूमकर देखा। उसको अपनी घोड़ागाड़ी के पीछे एक अन्य घोड़ागाड़ी आती दिखाई दी। उसका संदेह विश्वास में बदल गया। उसने रुपयों को सुरक्षित करने का विचार किया। उसकी समझ में यही आया कि नोटों को गिन डालना चाहिए और सबको रूमाल में बाँधकर कुरती के अंदर की जेब में रख लेना चाहिए। बाहर दस-बीस रुपए ही रखने ठीक होंगे।

अतः वह स्टेशन पर पहुँच पेशाबघर में चला गया। वहाँ नोटों के बंडल में से चार पाँच-पाँच रुपए के नोट निकालकर बाहर की जेब में रख लिए। शेष को रूमाल में बाँध भीतर की जेब में रख, बाहर चला आया। टिकटघर के पास पहुँच, उसी आदमी को, जिसको उसने थाने के बाहर खड़े देखा था, वहाँ खड़ा देख, वह सतर्क हो गया। जब वह टिकट लेने लगा तो वह व्यक्ति भी टिकट लेने आ खड़ा हुआ। सुंदर ने पूना का टिकट

लिया तो उसने भी पूना का टिकट ले लिया।

इससे सुंदर के मन में विश्वास पक्का जम गया कि वह कोई जेब-कतरा अथवा ठग है। उसने उसी समय अपने मन में निश्चय कर लिया कि उसको धोखा दे, उससे अलग हो जाएगा।

रेलगाड़ी में उस व्यक्ति ने अपना नाम बताया, सुंदर का नाम पूछा और काम-काज, पूना जाने का कारण इत्यादि विषयों पर बात कर, अपने घर ले चलने का प्रस्ताव कर दिया। तत्पश्चात् सुंदर को नौकरी दिलाने का भी प्रलोभन उसने दिया।

इस पर सुंदर उसको चकमा देने का विचार करने लगा। जब वह बातें करता हुआ चुप हुआ तो सुंदर ने सीट की पीठ का आश्रय ले, आँखें मूँद, सोने का बहाना किया। उसने देखा कि कुछ समय के पश्चात् उसके साथ आनेवाला व्यक्ति वास्तव में ही सो गया है।

गाड़ी शिवपुरी रोड स्टेशन पर ठहरती नहीं थी। आज किसी कारणवश ठहरी तो सुंदर चुपचाप उठा और गाड़ी से नीचे उतर गया। उसने निश्चय कर लिया था कि वह अगली ट्रेन से पूना जाएगा।

अगली ट्रेन पैसेंजर गाड़ी थी। वह उसमें सवार हो रात के दस बजे पूना पहुँचा। उसका मन कहता था कि माधवराव उसकी इस गाड़ी से प्रतीक्षा करेगा। किंतु वह माधवराव के घर जाकर ठहरना तो दूर, उसको अपना ठहरने का स्थान भी बताना नहीं चाहता था। इस कारण जब गाड़ी प्लेटफॉर्म पर पहुँची तो वह गाड़ी में छुपकर प्लेटफॉर्म पर देखने लगा। उसका अनुमान ठीक ही निकला। माधवराव प्लेटफॉर्म पर खड़ा तन्मयता से गाड़ी की सवारियों में किसी को खोज रहा था। सुंदर छिपकर खड़ा रहा। उसका डिब्बा आगे निकल गया और माधवराव पीछे रह गया। जब गाड़ी खड़ी हुई तो माधवराव लपककर स्टेशन से बाहर निकलने के द्वार पर जा खड़ा हो गया। सुंदर अपने डिब्बे में से उसकी गतिविधि देख रहा था। जब माधव फाटक के समीप खड़ा यात्रियों को निकलता देख रहा था, सुंदर गाड़ी के पिछली ओर से निकल, दूसरी लाइन पर खड़ी एक अन्य

गाड़ी में घुस गया। उसको लाँघकर वह दूसरे प्लेटफॉर्म पर पहुँच गया। वहाँ वह एक बेंच पर बैठ, अपनी गाड़ी की सवारियों को बाहर जाता देखता रहा।

जब सब लोग चले गए तो वह पुनः अपनी गाड़ी में आ गया। वहाँ से उसने प्लेटफॉर्म की ओर देखा। उसने देखा कि माधवराव निराश-सा धीरे-धीरे प्लेटफॉर्म से बाहर की ओर जा रहा है। अब सुंदर प्लेटफॉर्म पर निकल आया और टहलता हुआ एक टी-स्टाल पर जा खड़ा हो गया। वहाँ पर एक प्याला चाय पीकर वह स्टेशन से बाहर आया। तब तक माधवराव जा चुका था।

उसने एक साइकिलरिक्शावाले से पूछा, "यहाँ कोई धर्मशाला है?"

"हाँ साहब। चलिए, ले चलता हूँ।"

सुंदर उस रिक्शे में बैठ गया। वह उसको घुमा-फिराकर एक धर्मशाला में ले गया। वहाँ आठ आने रोज पर उसको एक कमरा और एक चारपाई मिल गई। रिक्शावाले को आठ आने देकर सुंदर ने विदा कर दिया।

अगले दिन से सुंदर ने नौकरी ढूँढनी आरंभ कर दी। अपने लिए कपड़े बनवाए और एक क्लर्क के योग्य पहरावा पहन, दुकान-दुकान पर जाकर नौकरी ढूँढने लगा।

प्रायः उसे यही उत्तर मिलता था—"यहाँ कोई स्थान नहीं है।" कहीं-कहीं कोई परिचय माँग लेता। एकाध स्थान पर यह भी पूछा गया कि वह पढ़ा-लिखा कितना है?

इस प्रश्न के उत्तर में वह कहता, "मैं अंग्रेजी अच्छी तरह लिख-पढ़ सकता हूँ। हिंदी और गुजराती भी जानता हूँ। हिसाब-किताब भी कर सकता हूँ।"

इस पर फिर प्रश्न होता, "कौन-सी परीक्षा उत्तीर्ण की है?"

सुंदर कहता—"मैं घर पर ही पढ़ा हूँ?"

"हमारे यहाँ नौकरी नहीं है।"

"आप एक बार परीक्षा लेकर तो देख लीजिए। मैं समझता हूँ कि मेरी योग्यता किसी ग्रेजुएट से कम नहीं है।"

"गुजराती हो?"

"जी नहीं। उत्तरप्रदेश के कुमायूँ डिवीजन का रहनेवाला हूँ।"

"गुजराती कैसे जानते हो?"

"एक गुजराती सेठ के यहाँ नौकरी की थी। वहीं पर सीखी थी।"

"मराठी जानते हो?"

"नहीं, किंतु शीघ्र ही सीख लूँगा।"

"नहीं, इसके बिना हमारा कार्य नहीं चलेगा। तुम कोई और स्थान देख लो।"

इस प्रकार नौकरी ढूँढते हुए तीन मास व्यतीत हो गए। इस अवधि में वह लगभग डेढ़ सौ रुपया व्यय कर चुका था। सेठ यादवदेव ने उसके पाँच वर्ष के कार्यकाल का वेतन, सब गिनगिनाकर तथा पुस्तकों आदि के लिए उसने जो कुछ लिया था, वह काटकर, कुल नौ सौ बीस रुपए उसके लिए भिजवाए थे। इससे वह सर्वथा निरुत्साहित तो नहीं हुआ, हाँ, दिन-भर नौकरी की खोज में घूमने से वह जीवन को तिल-तिल कर व्यर्थ जाता देख घबरा उठा था। वह समझता था कि यदि चालीस-पचास रुपए महीने भी मिल जाएँ तो वह जीवन में स्थिर हो, अपनी उन्नति का उपाय सोच सकता है।

इसी प्रकार विचार करते-करते उसकी समझ में आया कि दिमागी काम की नौकरी तो मिलेगी नहीं। इसलिए अब शारीरिक परिश्रम का काम ढूँढना चाहिए। उसके मन में विचार आया कि यदि साइकिलरिक्शा चला ले तो कैसा रहे? इस विषय में वह गंभीरतापूर्वक सोचने लगा।

साइकिलरिक्शा बिना लायसेंस के नहीं चल सकती। लायसेंस बिना सिफारिश और रिश्वत के नहीं मिल सकता। नगर में बहुत-से धनी लोगों ने साइकिलरिक्शा के लायसेंस ले रखे हैं और चलानेवाले नित्य रिक्शा ठेके पर ले जाते हैं, दिन-भर चलाते हैं और रात को रिक्शा लौटाकर ठेके का

रुपया दे, शेष धन से अपना निर्वाह करते हैं।

अगले दिन एक रिक्शा के ठेकेदार के पास जाकर दो रुपए नित्य किराए पर उसने रिक्शा ले ली। ठेकेदार ने वाकफियत माँगी, परंतु सुंदर की सूरत-शक्ल देख, बिना वाकफियत और जमानत के रिक्शा देने के लिए वह तैयार हो गया। केवल उसके ठहरने का पता लिख लिया।

सुंदर प्रातः सात बजे रिक्शा लेकर निकला और मध्याह्न तक उसने सात रुपए बना लिए। वह उसी रिक्शा में अपने खाने के स्थान पर गया और वहाँ दूध, रोटी, साग-भाजी खाकर रिक्शा ठेकेदार को वापस करने जा पहुँचा।

उसने रिक्शा वापस दी। दो रुपए साथ दिए और सराय की ओर चल पड़ा। ठेकेदार ने उसे पीछे से आवाज दी। सुंदर लौट आया और ठेकेदार के सम्मुख खड़ा हो गया। ठेकेदार ने पूछा, "तुम सराय में रहते हो?"

"जी।"

"वहाँ क्या किराया देते हो?"

"प्रतिदिन का आठ आना।"

"फिर सायंकाल रिक्शा नहीं चलाओगे क्या?"

"जी नहीं।"

"कितना पैदा कर लिया है आज?"

"आपका किराया देकर तीन रुपए पाँच आने मेरे पास बचे हैं। मैं दिन का भोजन भी कर चुका हूँ।"

"कोई बाल-बच्चा नहीं है?"

सुंदर हँस पड़ा और बोला, "जी, अभी विवाह नहीं हुआ। माता-पिता हैं नहीं। अकेला ही हूँ।"

ठेकेदार विस्मय कर रहा था। जब सुंदर जाने जगा तो उसने कहा, "अब शेष समय में क्या करोगे?"

"एक अन्य कार्य है, वह करूँगा।"

"क्या काम है, हम भी तो जानें?"

"मैं कुछ पढ़ता-लिखता भी हूँ।"

"क्या पढ़ते हो?"

सुंदर ने ठेकेदार को टालने के लिए कह दिया, "हेगल की फिलॉसौफी।"

ठेकेदार समझा नहीं। वह इतना ही समझा कि यह कोई कम्युनिस्ट है। वही लोग इस प्रकार के कठिन शब्द बोला करते हैं। उसने कुछ विचारकर कहा, "कहीं मकान ले लो तो ठीक रहेगा। धर्मशाला में तो किराया अधिक देना होता है, इस पर भी वहाँ आराम कम मिलता है।"

"आप ही कोई मकान बता दीजिए न?"

"मेरा ही एक मकान है। भाड़ा तो पंद्रह रुपए होगा परंतु कमरे दो होंगे। टट्टी होगी। गुसलखाने के लिए तो बाहर अहाते में ही नल लगा है।"

"मकान दिखा दीजिए।"

अब सुंदर समझ रहा था कि वह चार-पाँच रुपए नित्य कमा लिया करेगा। दिन का कुछ भाग वह अपनी ज्ञान-वृद्धि में लगाया करेगा। एक अभिलाषा उसमे मन में थी कि वह भी पुस्तकें लिख सके, छपवा सके और अपने मन में उठ रहे विचारों को अन्य व्यक्तियों तक पहुँचा सके।

परंतु वह विचार करता था कि वह अभी सत्रह वर्ष की आयु का है। उसको पुस्तकों का तो कुछ ज्ञान है, किंतु अनुभव बहुत कम है। इस पर भी वह विचार करता था कि उसके जीवन का यही उद्देश्य है और इसकी प्राप्ति के लिए उसको तैयारी करनी चाहिए।

आज वह विचार करने लगा कि अब वह क्या पढ़ेगा और किस प्रकार भविष्य में अपनी ज्ञान-वृद्धि कर सकेगा।

एक सप्ताह में ही उसने ठेकेदार का मकान भाड़े पर ले लिया। अपने पढ़ने के लिए वह एक अंग्रेजी का शब्द-कोष ले आया और इतिहास की पुस्तकें लाकर स्वाध्याय करने लगा। उसका यह स्वभाव भावना को पढ़ते देखकर बना था। वह अपने पढ़े हुए विषय को पुनः संक्षेप में लिख लिया करता था और उस पर अपने पूर्वज्ञान से टिप्पणियाँ

लिखता रहता था।

इस प्रकार उसकी जीवन-नौका आराम से चलने लगी। उसने डाकखाने में अपना सेविंग खाता खोल लिया। सप्ताह पश्चात् जो कुछ बचता था, वह उसमें जमा करा दिया करता था।

[2]

इस प्रकार कार्य करते हुए दो वर्ष व्यतीत हो गए। इस समय तक उसका 'बैंक बैलेंस' दो सहस्र रुपए तक हो गया था और एक सहस्र रुपए की उसने पुस्तकें खरीदकर पढ़ ली थीं। रिक्शा उसकी हो गई थी।

इस काल में एक बात और हुई थी। साइकिल-रिक्शाचालक यूनियन का वह सदस्य बन गया था। वह सदा ही यूनियन की मीटिंग्स में नियमित रूप से जाने लगा था। यूनियन का मंत्री कृष्णराव नामक एक महाराष्ट्रियन ब्राह्मण युवक था। वह पढ़ा-लिखा और मार्क्सवाद का ज्ञाता था। यूनियन की मीटिंग्स में वह रिक्शाचालकों को अपने ज्ञान का प्रसाद दिया करता था।

सुंदर चुपचाप, बिना अपनी सम्मति दिए मीटिंग्स में बैठा रहता था। यूनियन का झगड़ा प्राय: ठेकेदारों से होता था। उनके विरुद्ध वे नगरपालिका के अधिकारियों से मिलकर, उनके लायसेंस जब्त कराने अथवा उनके रिक्शा ठीक रखने और सीधे चालकों को लायसेंस देने के विषय में कहते रहते थे। अपने इन प्रयत्नों में यूनियन के अधिकारी कुछ सीमा तक सफल भी होते जाते थे। इस पर भी कृष्णराव वायलिन के तार की भाँति यूनियन को सदा तनाव की स्थिति में रखने में प्रयत्नशील रहता था।

सुंदर ने यूनियन के प्रस्तावों का कभी विरोध नहीं किया था। इससे कृष्णराव उसको एक मूर्ख, सरलचित्त सदस्य के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं समझता था।

एक दिन यूनियन में यह चर्चा चली कि नगर के रिक्शा के ठेकेदारों

ने भी अपनी यूनियन बना ली है। उसका नाम उन्होंने 'रिक्शा ओनर्ज यूनियन' रखा है। इससे वे रिक्शाचालकों की यूनियन की माँगों का विरोध करने का विचार करते थे।

कृष्णराव इसको एक भयंकर चाल समझता था। उसने यूनियन में प्रस्ताव उपस्थित किया कि अधिकारियों से मिलकर, उनको इसकी भयंकरता का परिचच कराया जाए और इस प्रकार इस यूनियन को अवैधानिक घोषित करा दिया जाए।

सुंदर आज कृष्णराव की युक्तियों को सुनकर मुस्करा रहा था। प्रस्ताव उपस्थित हुआ और स्वीकार कर लिया गया। सुंदर ने सदा की भाँति आज भी इस प्रस्ताव का कोई विरोध नहीं किया। परंतु कृष्णराव चाहता था कि सब लोग हाथ खड़ा कर प्रस्ताव का समर्थन करें। उसने कहा, ''यह विषय अत्यावश्यक है। यह हमारे जीवन-मरण के संघर्ष का श्रीगणेश है। हम इस बात को सहन नहीं कर सकेंगे कि खून चूसनेवाले भी संगठित हो जाएँ। इस कारण आरंभ में ही इसका समूल नाश करने के लिए हमको अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए प्रण करना है। अत: मैं चाहता हूँ कि सब सदस्य हाथ खड़ा कर इस प्रस्ताव का समर्थन करें।''

सुंदर अभी भी मुस्करा रहा था। सबने हाथ खड़े किए, परंतु सुंदर तब भी चुपचाप बैठा रहा। कृष्णराव यह देख रहा था। इससे उसके माथे पर त्यौरी चढ़ गई। उसने कहा, ''एक सदस्य है, जो हमारे इस संघर्ष से पृथक् रहना चाहता है।''

''आपका अनुमान ठीक है।'' सुंदर ने उसके उत्तर में कह दिया।

''क्यों?''

''मैं इस विषय में किसी प्रकार की भी युक्ति करना नहीं चाहता।''

''अर्थात् तुम मूर्ख हो, अपने हित-अहित का भी तुम्हें कोई ज्ञान नहीं है।''

''मुझे सब ज्ञान है और जानता हूँ कि मेरा हित और अहित किसमें है।''

"हम भी सुनना चाहते हैं।"

"तो सुनो।" सुंदर ने खड़े होकर कहा, "मैं नहीं चाहता था कि कोई ऐसी बात कहूँ, जिससे आप लोगों के मन में अपने संगठन के प्रति संदेह उत्पन्न होने लगे।'

"मैं अपना और अपने सहयोगियों का यह अधिकार समझता हूँ कि हम अपने हितों की रक्षा के लिए यूनियन बनाएँ, अधिकारियों से मिलें, उनको अपने हितों की प्रेरणा देने के लिए वकील करें। साथ ही ये सब अधिकार मैं दूसरों को भी देना चाहता हूँ। उनको भी अधिकार होना चाहिए कि वे अपनी यूनियन बनाएँ, वकील करें, अधिकारियों से मिलें और न्यायसंगत यत्न द्वारा अपने हितों की रक्षा करें।"

"इससे तो अनर्थ होने की संभावना है।" कृष्णराव ने कहा।

"इससे हमारा उतना ही अनर्थ हो सकता है, जितना हमारे संगठन से उनका।"

"हम क्या अनर्थ कर सकते हैं?"

"यदि मैं कृष्णरावजी के कथन को दोहराऊँ तो हम माँग कर सकते हैं कि जो चालक जिस रिक्शा को चलाता है, वह रिक्शा उसकी ही हो जाए। यदि कृष्णरावजी की यह माँग स्वीकार कर ली जाए तो इससे तो अनर्थ हो जाएगा?"

"परंतु हमारी इस माँग को स्वीकार नहीं किया जाएगा, क्योंकि यह नैसर्गिक न्याय के विपरीत है। यह भारत के संविधान के भी विपरीत है।"

"इसी प्रकार जब रिक्शा-मालिकों की यूनियन कोई न्याय और संविधान के विरुद्ध माँग करेगी तो वह मानी नहीं जाएगी।

"अर्थात् संगठन बनाने से न हम अनर्थ कर सकते हैं और न ही कोई दूसरा कर सकेगा। किसी को भी संगठित होने का हमारे संविधान में अधिकार है। इस कारण मैं इसका विरोध नहीं कर सकता।"

"तो आप चोर और ठगों को भी अपना संगठन बनाने का अधिकार देते हैं?"

"जब वे चोरी करेंगे तो कानून भंग करेंगे अथवा जब चोरी करने के लिए वे संगठित होंगे तो कानून इसमें हस्तक्षेप करेगा। उससे पहले नहीं। रिक्शा का मालिक होना कोई चोरी नहीं। अपनी वस्तु को किराए पर देना भी कोई चोरी अथवा ठगी नहीं है। इस कारण ऐसा कार्य करनेवालों का संगठन भी चोर अथवा ठगों का संगठन नहीं कहा जा सकता।"

दो वर्ष से चुप रहनेवाला, बुद्धुओं की भाँति यूनियन की कार्यवाही को सुननेवाला तथा मूर्ख लगनेवाला सुंदर जब बोला तो कृष्णराव निरुत्तर हो गया। उसने अपनी अंतिम चाल चली और कहा, "रूस में ऐसे संगठन की स्वीकृति नहीं है।"

"मैं रूसी शासन का सदस्य नहीं हूँ। वे जो कुछ करते हैं, वह भी मुझे पसंद है, यह कैसे जान लिया? मैं तो मानव को स्वतंत्रता तथा स्वेच्छा से विचरण करनेवाला प्राणी मानता हूँ। उसकी स्वतंत्रता पर मैं केवल एक प्रतिबंध चाहता हूँ, वह यह कि वह किसी की स्वतंत्रता का विरोध न करे।"

इस पर कृष्णराव ने कह दिया, "इससे तो घोर अनर्थ मच जाएगा। संसार में इतनी छीना-झपटी होगी कि नर-रक्त की नदियाँ बहने लगेंगी।"

इस पर सुंदर ने कहा, "इन सरलचित्त, कम पढ़े-लिखे, मजदूरी कर पेट भरनेवाले बेचारों को धोखा मत दो, कृष्णराव! मैं पूछता हूँ बताओ, ऐसा कौन-सा काम है, जो अनर्थकारी हो, परंतु किसी दूसरे की स्वतंत्रता हनन न करता हो। बताओ, मैं तुमको चैलेंज करता हूँ। है कोई ऐसा काम?"

कृष्णराव विचार करने लगा। उसको चुप देख यूनियन के अन्य सदस्य उसका मुख देखने लगे। इस पर सुंदर ने अपनी बात कह दी—"रिक्शा ओनर्ज का अपनी यूनियन बनाना किसी भी दूसरे की, किसी भी प्रकार से, स्वतंत्रता नहीं छीनता। इस कारण उसके बनाने में मुझको कोई आपत्ति नहीं है।

"जब यूनियन किसी प्रकार की कोई ऐसी बात करेगी, जो हमारी

अथवा किसी अन्य की स्वतंत्रता छीनना चाहेगी तो मैं आपको कहूँगा कि उनकी उस बात का विरोध किया जाए।''

इस पर कृष्णराव बोला, ''बात यह है कि हमारी सरकार सरमायादारों की सरकार है। इससे हम नहीं चाहते कि सरमायादारों की यूनियन बने, जिससे सरकार को हम पर अन्याय करने का बहाना मिल जाए।''

''फिर वही धोखा-धड़ी की बात। भारत में सरमायादारों की सरकार नहीं है। यह भारत के रहनेवालों की सरकार है। प्रत्येक इक्कीस वर्ष से बड़ी आयुवाले को सरकार बनाने में राय देने का पूरा अधिकार है। इस कारण जो भी सरकार बनती है, वह भारत में रहनेवाले प्रत्येक मनुष्य की सरकार है। यदि वहाँ कम्युनिस्ट सरकार नहीं तो वह इसलिए कि जनसाधारण कम्युनिस्ट नहीं। पहले उनमें प्रचार करो।''

कृष्णराव समझ गया कि सुंदर को जैसा वह समझता था, वैसा वह नहीं है। इस कारण उसने नीति से काम लेने की सोची और बोला, ''अच्छा छोड़ो इस बहस को। क्या मैं यह समझूँ कि यह प्रस्ताव निर्विरोध स्वीकार हो गया है?''

इस पर एक चालक कहने लगा, ''नहीं साहब! अब हमको सुंदर बाबू से कुछ और पूछना है। हम उनकी स्पष्ट सम्मति चाहते हैं कि वे क्यों इस प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हैं?''

कृष्णराव नहीं चाहता था कि सुंदर को कुछ और अधिक कहने का अवसर दिया जाए। अतः उसने कहा, ''सुंदर बाबू को जो कुछ कहना था, वह कह चुके हैं।''

इस पर एक अन्य चालक कहने लगा, ''हम सुंदर बाबू से पूछते हैं कि क्या वह और कुछ नहीं कहना चाहते?''

विवश कृष्णराव ने सुंदर की ओर देखा तो सुंदर पुनः उठकर कहने लगा, ''साथियो! मैं यह समझता हूँ कि रिक्शा के मालिकों की यूनियन बनने से हमको कुछ भी हानि नहीं होगी। हाँ, यदि हम कुछ बुद्धि से काम

लें तो इससे लाभ हो सकता है। कितने ही रिक्शा चलानेवाले रिक्शा के मालिक भी हैं। वे सब उनकी यूनियन के भी सदस्य बन सकते हैं। मैं स्वयं ऐसा ही करने जा रहा हूँ। मेरे साथ आपमें से वे व्यक्ति जो मालिक और चालक दोनों हैं, उस यूनियन के सदस्य बन जाएँ। इस स्थिति में हम उनको किसी प्रकार का भी अन्याय करने से सरलता के साथ रोक सकेंगे।

''साथियो! मैं मालिक और नौकर में कोई ऐसी रेखा नहीं मानता जो पार न की जा सके। अनेकों नौकर मालिक हो गए हैं। इस कारण हम भी मालिक हो सकते हैं। उनके विरुद्ध अकारण घृणा करना अपनी उन्नति की निंदा करना है।''

इसके पश्चात् कृष्णराव को अपना प्रस्ताव स्वीकार कराना कठिन हो गया।

सभा विसर्जित हो गई।

[3]

यूनियन की मीटिंग के पश्चात् कृष्णराव सुंदर के साथ-साथ चलता हुआ पूछने लगा, ''बाबू! तुममें तो बोलने की अनुपम योग्यता है। कभी-कभी हमारी मीटिंगों में चलकर भी तुम थोड़ी देर भाषण दे दिया करो।''

''कौन-सी मीटिंग?''

''हमारी पार्टी की।''

''कौन-सी पार्टी है तुम्हारी?''

''कम्युनिस्ट पार्टी।''

''मुझको मूर्ख बना रहे हो, कृष्णराव!''

''क्यों, मूर्ख बनानेवाली ऐसी कौन-सी बात कही है मैंने?''

''मैंने कम्युनिज्म का सिद्धांत और इतिहास पढ़ा है। इससे मैं कहता हूँ कि विद्वान् आदमी वह होता है, जो दूसरे के होंठ फड़कते देख समझ जाए कि वह क्या कहना चाहता है। एक मूर्खता तो तुमने मीटिंग में ही की है। मुझको चुप देख तुम्हें पहले ही समझ जाना चाहिए था कि मैं यूनियन

के अन्य सदस्यों की भाँति अनपढ़ नहीं हूँ, जो तुम्हारे अर्थहीन नारों के पीछे मरने के लिए तैयार हो जाता। तुमने जब हाथ उठवाए तो भी तुमको समझ जाना चाहिए था कि मैं प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हूँ। तुमने मुझे विवश किया कि मैं विरोध का कारण बताऊँ। जब मैंने बताया तो तुम मेरी बात का उत्तर नहीं दे सके।

''यह जानते हुए भी कि मैं मालिक और नौकर की पृथक् श्रेणियाँ नहीं मानता, किसी मालिक का अन्यायाचरण उतना ही संभव समझता हूँ, जितना किसी नौकर का अन्याय करना। मालिकों अथवा नौकरों के अन्यायाचरण को रोकने का ढंग वह नहीं जो कम्युनिस्टों के गुरु कार्ल मार्क्स ने बताया है। उसका उपाय है एक सुदृढ़, न्यायनिष्ठ, निष्पक्ष, परमात्मा के न्याय से डरनेवाली सरकार का निर्माण करना। ऐसी सरकार बनाने के लिए मनुष्य को विचार और कार्य करने में पूर्ण स्वतंत्रता देनी आवश्यक है। तभी एक व्यक्ति अथवा श्रेणी का अन्याय रोका जा सकता है।''

''सुंदर! तुम रिक्शा क्यों चलाते हो? तुम तो इतने योग्य हो कि किसी भी कारखानेदार से एक सहस्र महीना वेतन पा जाओगे। तुम उनकी वकालत बहुत ही योग्यता से कर सकते हो।''

''और कृष्णराव! तुम बहुत ही भोले हो। मैं स्वतंत्र रहना चाहता हूँ इसी कारण मैं किसी की नौकरी नहीं करना चाहता। मैं किसी की वकालत करता हूँ तो इसलिए नहीं कि मैं किसी का नौकर हूँ अथवा किसी का नौकर बनना चाहता हूँ।

''मैं वर्तमान युग में सरमायादारों को भी उतना ही पापी मानता हूँ, जितना 'मजदूर-मजदूर' का नाद करनेवाले मजदूर नेताओं को। दोनों एक ही भूमि की उपज हैं।

''दोनों परमात्मा के वास्तविक रूप को न माननेवाले हैं। दोनों नास्तिक हैं। अतः दोनों को एक ही अधर्माचरण भाता है।''

सुंदर अपने घर की ओर जा रहा था। कृष्णराव इस रहस्यमय युवक

के रहस्य को जानने के लोभ में साथ-साथ चल रहा था। जब सुंदर ने परमात्मा को अपनी युक्ति में ला बिठाया तो कृष्णराव खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने कह दिया, "यह रिक्शा चलाने में आस्तिक अथवा नास्तिकवाद कहाँ से आ गया? जब मंदिर में जाया करो तो अपने पूरे जोर से उस बहरे को पुकार लिया करो। किंतु यहाँ हमारे सम्मुख तो कम-से-कम इनसानों की-सी बात करो।"

"कृष्णराव! मंदिर तो मैं कभी गया ही नहीं। वहाँ जाने की मुझे कभी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। इस पर भी मैं यह मानता हूँ कि इस ब्रह्मांड में कोई एक ऐसी शक्ति है, जो सबको देखती है और सबके साथ न्याय होने में कारण-रूप है। इस कारण मैं एक मजदूर होता हुआ भी अपनी न्याय-बुद्धि को नहीं छोड़ता। मैं जब भी कोई कार्य ऐसा करने लगता हूँ, जो किसी दूसरे को हानि पहुँचानेवाला अथवा किसी दूसरे की स्वतंत्रता का हनन करनेवाला हो, तो उस परमशक्तिवान् की उपस्थिति को अनुभव कर, वैसा कार्य करने से रुक जाता हूँ।

"यदि मालिक अन्याय करते हैं तो इस कारण करते हैं कि उनके मन में यह विश्वास होता है कि उनके कामों को देखनेवाला कोई नहीं है। वे भले ही राम-नाम की माला फेरते हों, यदि उनके मन में परमात्मा के अस्तित्व पर विश्वास होता तो वे मजदूरों के हक को कभी नहीं छीनते।

"सरकार की पुलिस, फौज और कानून को धोखा दिया जा सकता है, परंतु परमात्मा, जो सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, उसको धोखा देना कठिन है।

"इसी प्रकार मजदूर नेता भोले-भाले मजदूरों को झूठ बोलकर, अपने वाग्जाल में फँसाकर उनसे अन्याय कराते हैं तो वह इस कारण कि वे समझते हैं कि मनुष्य अल्पज्ञ है, उसको धोखा देकर वे अपनी नेतागिरी कायम रख सकते हैं। यदि उनके मन में परमात्मा पर विश्वास होता तो वे ऐसा करने से डरते और वैसा कुछ नहीं कर सकते जैसा रूस के नेताओं ने हंगरी के लाखों भोले-भाले लोगों को मौत के घाट उतारकर किया है।"

"क्या अपराधियों को दंड नहीं दिया जाना चाहिए?"

"वे अपराधी थे क्या? किसके विरुद्ध अपराध किया था उन्होंने?"

"हंगरी की नियमित सरकार को उलट दिया था उन्होंने।"

"किंतु रूस की सरकार को तो नहीं उलटा था न? यह नियमित सरकार इमरे-नश को दंड नहीं देना चाहती थी। परंतु रूसी सेना और हवाई जहाजों ने साठ हजार हंगरी के रहनेवालों की हत्या कर डाली।"

"सुंदर! तुम नहीं समझ सकते। इतनी दूर बैठे कैसे तुम जान सकते हो कि कौन दोषी था और कौन नहीं?"

"ठीक है, परंतु तुम इतनी दूर बैठे वह सब कैसे जानते हो, जो मैं नहीं जान सकता?"

"वहाँ पर गए लोगों के वक्तव्य पढ़ने से पता चलता है।"

"मैं वहाँ के रूसी अत्याचार से बचकर तथा भागकर आए निर्वासितों के वक्तव्य पढ़कर कह रहा हूँ।"

"तो हम दोनों गलत हो सकते हैं?"

"ठीक है; इस बात को मानकर आज से चीन और रूस के उदाहरण मत दिया करो।"

"उन दोनों देशों ने बहुत उन्नति की है।"

"किस बात में?"

"विज्ञान में।"

"विज्ञान से क्या करोगे, जब मानवों में मानवता ही नहीं रही। वहाँ सब इतने भयभीत हैं कि अपने मन की बात भी नहीं कह सकते। बोरिस पैस्टरनेक की बात तो बहुत पुरानी नहीं है।"

इस समय सुंदरलाल का घर आ गया। एक अहाते में कई दो-मंजिलें मकान थे। छोटे-छोटे घर थे। टट्टी और रसोईखाना साथ था। एक ऊपर की मंजिल वाला मकान सुंदर ने लिया हुआ था।

सुंदर ने एक कमरे में सोने के लिए एक लकड़ी की चौकी और उस पर एक चटाई बिछा रखी थी। इसी कमरे में दीवार के साथ खूँटी गड़ी थी,

जिस पर उसकी धोती और अँगोछा तथा रिक्शा चलाने के समय के कपड़े टँगे हुए थे। तख्त के पास एक छोटी-सी चौकी थी, जिस पर एक छोटा-सा लोहे का संदूक था। उसमें वह अपने कपड़े रखता था। इस कमरे के साथ एक और कमरा था, जिसमें लकड़ी के रैक बने थे। उसमें पुस्तकें तथा पढ़े हुए समाचार-पत्र रखे थे। रैक के आगे भूमि पर एक चटाई बिछी थी। चटाई पर एक डेस्क था, जिस पर लिखने का सामान रखा था।

सुंदर कृष्णराव को अपने घर पर ले गया। कृष्णराव उसका पुस्तकालय देखने लगा। कार्ल मार्क्स, ऐन्जल्स, हक्सले, हेगल, डिजिलस दयानंद, शंकर, विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस की लिखी पुस्तकें वहाँ भरी पड़ी थीं। महाभारत, रामायण, उपनिषद् इत्यादि ग्रंथ भी थे। यूरोप के बहुत से देशों के इतिहास के साथ-साथ भारत के इतिहास के भी कई ग्रंथ उस पुस्तकायल में विद्यमान थे। रैक पुस्तकों से ठसाठस भरे हुए थे। कृष्णराव ने हक्सले की एक पुस्तक निकाली और खोलकर देखने लगा। स्थान-स्थान पर पुस्तक में चिह्न लगे हुए थे।

जब कृष्णराव पुस्तकें देखने लगा तो सुंदर रसोईघर में गया और स्टोव जलाकर चाय बनाने लगा। कृष्णराव देख रहा था कि वह एक अति विद्वान् परंतु सादा जीवन व्यतीत करनेवाले युवक के घर में आ गया है। स्थान अत्यंत ही साफ-सुथरा, परंतु फर्नीचर-रहित था। घर में बिजली तो लगी थी, परंतु अन्य सुख-सामग्री नहीं थी।

जब सुंदर दो प्यालों में चाय और बिस्कुट लाया तो कृष्णराव विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। उसने चाय का एक प्याला उसके हाथ से लेकर चटाई पर बैठते हुए कहा, ''मैं नहीं जानता था कि तुम इतने पढ़े-लिखे युवक हो। वह एक सरमायादार समाज को लानत है कि तुम जैसा विद्वान् व्यक्ति रिक्शा चलाकर अपना पेट भरता है।

''और मैं यदि किसी कम्युनिस्ट देश में होता तो आज से बहुत पहले किसी 'कन्संट्रेशन कैंप' में जीवन-दान कर चुका होता है।

''कृष्णराव! यह डेमोक्रेटिक देशों में ही संभव है कि एक विद्वान्

स्वेच्छा से पढ़ता, लिखता और बोलता है। रिक्शा चलाना कोई बुरी बात नहीं है। बुरी बात है अपनी आत्मा को बेचना। वह मैं नहीं कर रहा।''

[4]

रेलवे स्टेशन पर सदा काम मिलता था। इस कारण सुंदर प्रातः सात बजे वहाँ पहुँच जाता था। बंगलोर से सवा सात बजे गाड़ी आती थी और इसमें बहुत भीड़-भाड़ होती थी।

सुंदर अपनी रिक्शा लिए खड़ा था। एक औरत स्टेशन से निकली। वह ईसाई औरतों के-से कपड़े पहने हुए थी। हाथ में एक छोटा-सा सूटकेस था। सुंदर ने देखा तो पहचान गया। वह मिसेज़ पाल थी। एक क्षण उसको अपने काम पर लज्जा-सी लगी, परंतु दूसरे ही क्षण वह इस हीन भावना को अपने में से निकाल आगे बढ़ा और बोला, ''मदर! रिक्शा चाहिए!''

''मदर!'' मिसेज़ पाल ने चौंककर सुंदर की ओर देखा और पहचान गई। उसने कहा, ''तुम? सुंदर, तुम रिक्शा चलाते हो?''

''हाँ, मदर! आइए, छोड़ आऊँ। कहाँ चलना है?'' इतना कह उसने मिसेज़ पाल के हाथ से सूटकेस ले लिया।

मिसेज़ पाल को, अपने एक प्रिय विद्यार्थी को इस प्रकार का कार्य करते देख बहुत दुःख हुआ। उसी क्षण उसे मिसेज़ स्मिथ के व्यवहार का स्मरण हो आया। इस आशा से कि कदाचित् अभी भी वह उसकी सहायता कर सके, वह उसके रिक्शा में बैठ गई। सुंदर ने सूटकेस रिक्शा के हुड पर रख लिया और स्वयं लपककर साइकिल की गद्दी पर बैठ पूछने लगा, ''कहाँ चलूँ?''

''सेंट ऐंथोनी स्कूल के बोर्डिंग हाउस में।''

''तो आप यहाँ भी पढ़ाती हैं?''

''हाँ, मेरा यहाँ तबादला हो गया है। मुझको अभी यहाँ आए तीन महीने ही हुए हैं। यहाँ तुम कब से हो?''

"मुझे यहाँ आए दो वर्ष से अधिक हो गए हैं।"

"पहले कहाँ थे?"

"बंबई में एक सेठ की नौकरी करता था।"

मिसेज़ पाल सुंदर के भागने के पश्चात् की घटनाओं का स्मरण करने लगी। सुंदर समझ गया था कि कहाँ जाना है। इससे वह रिक्शा दौड़ाता हुआ वहाँ जा पहुँचा। स्कूल के पीछे, वहाँ की अध्यापिकाओं के लिए क्वार्टर बने थे। जब रिक्शा वहाँ पहुँची तो एक नौकर क्वार्टर में से निकला और सूटकेस भीतर ले गया। मिसेज़ पाल ने भाड़ा देने के लिए अपना पर्स निकाला तो सुंदर ने हाथ जोड़कर कहा, "मदर! मुझे अभी आपका बहुत ऋण चुकाना है। कहिए, रोज घुमाने के लिए आ जाया करूँ?"

"देखो, सवेरे के समय पैसा लेने से इनकार किया जाए तो दिन-भर मंदी रहेगी।" इतना कह मिसेज़ पाल ने पर्स में से पचास नए पैसे निकाले, परंतु सुंदर ने वे नहीं लिए। उसने 'गुड-डे मदर!' कहा और जाने के लिए रिक्शा घुमाई तो मिसेज़ पाल ने पुकारा, "सुंदर! ठहरो। भीतर आ जाओ। तुमसे बातें करनी हैं।"

सुंदर एक क्षण तक विचार करता रहा। उसके पश्चात् रिक्शा एक ओर खड़ी कर, मिसेज़ पाल के पीछे-पीछे उसके ड्राइंगरूम में जा पहुँचा। मिसेज़ पाल एक कुर्सी पर बैठ गई और उसको सामने बैठा पूछने लगी, "रोज कितना कमा लेते हो?"

"जब से अपनी रिक्शा बनवाई है, सात-आठ रुपए नित्य मिल जाते हैं। मैं प्रातः सात बजे से मध्याह्न एक बजे तक काम करता हूँ। तत्पश्चात् भोजन कर विश्राम करता हूँ। सायंकाल प्रायः चार बजे से रात के आठ बजे तक स्वाध्याय करता हूँ। फिर रात भोजन कर आधा घंटा टहलता हूँ और तदनंतर दस बजे सो जाता हूँ। प्रातः चार बजे उठता हूँ। स्नानादि से निवृत्त हो, पूजा कर मैं साढ़े पाँच बजे अवकाश पा जाता हूँ। एक घंटा पढ़कर दूध पी, ठीक सात बजे काम पर पहुँच जाता हूँ।"

मिसेज़ पाल सुंदर के मुख से सात-आठ रुपए रोज की आय की बात सुन विचार कर रही थी कि इतने रुपए रोज का काम वह उसको किस स्थान पर दिलवा सकती है, जिससे कि उसका यह रिक्शा चलाने का काम छूट जाए। उसने सुंदर से पूछा, ''अब तुम कितना पढ़ गए हो?''

''मैं अंग्रेजी बहुत भली-भाँति पढ़, लिख और समझ सकता हूँ। दसवीं श्रेणी तक का गणित कर लेता हूँ। हिस्टरी, ज्योग्रफी भी बहुत स्टडी किया है। इसके अतिरिक्त जनरल लिटरेचर बहुत पढ़ा है।''

''कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की क्या?''

''नहीं, इसके लिए अवसर ही नहीं मिला।''

''तुमको नौकरी नहीं मिल सकती। मेरा विचार है कि तुम किसी स्कूल-कॉलेज में भर्ती हो जाओ। यह रिक्शा चलाने का काम कुछ अच्छा नहीं है। गुजारे के लिए मैं प्रबंध कर दूँगी।''

''धन्यवाद, मदर! जब मैं बंबई से आया था तो नौकरी के लिए मैंने बहुत यत्न किया था। दो महीने की भाग-दौड़ के पश्चात् मेरी समझ में आया कि न तो मैं नौकरी करने की योग्यता रखता हूँ, न ही इस दुनिया को मुझ जैसे व्यक्ति को नौकर रखने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। तब मैंने कोई मजदूरी का काम करने का निर्णय कर लिया। यह काम सुगमता से मिल गया है और फिर मैं इसमें बहुत सीमा तक स्वतंत्र हूँ।

''मैं छः घंटे से अधिक काम नहीं करता। शेष समय मैं अपनी मानसिक उन्नति में लगा हूँ और अब दो वर्ष के उपरांत मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मुझे नौकरी की आवश्यकता नहीं है।''

''तो क्या जीवन-भर रिक्शा ही चलाते रहोगे?''

''नहीं, मदर! मैंने अपने काम की योजना बना ली है। मैं लेखक बनने की तैयारी कर रहा हूँ। यों तो मैं अब भी लिख लेता हूँ; किंतु प्रकाशक मेरे कार्य की ओर ध्यान न देकर, मेरी डिग्रियों को देखते हैं और वे मेरे पास हैं नहीं। इस कारण अब मैं स्वयं ही प्रकाशक बनने का विचार कर रहा हूँ।''

"किस विषय पर लिखते हो?"

"मैंने एक पुस्तक 'भारतीय मीमांसा शास्त्र' नाम से लिखी थी। वह पुस्तक मैंने आठ-दस प्रकाशकों को दिखाई है। प्रायः मेरे नाम के आगे उपाधि न देख, बिना पढ़े ही वह पांडुलिपि वापस कर दी गई है।

"मैं एक प्रोफेसर साहब के बच्चों को नित्य ही स्कूल ले जाता हूँ और छुट्टी होने पर उनको वापस ले आता हूँ। उनको मैंने अपनी पुस्तक दिखाई थी। उन्होंने कुछ पन्ने पढ़कर कहा था, 'बहुत सुंदर लिखा है, सुंदर! परंतु यह जनसाधारण के उपयोग की नहीं है। विद्वानों के पास उस लेखक की पुस्तकें पढ़ने का समय ही कहाँ है, जिन पर किसी यूनिवर्सिटी की मुद्रा न लगी हो।'

"अतः मैंने गूढ़ तत्त्वों के विषय पर न लिखकर, जनसाधारण के लिए और उनके समझने योग्य भाषा में, उनके ही मतलब की बातें लिखनी आरंभ कर दी हैं। अर्थात् अब मैं उपन्यास लिखने का अभ्यास कर रहा हूँ।

"इसके छपवाने में भी वही कठिनाई है जो विद्वानों के लिए लिखी पुस्तक के छपवाने में सम्मुख आई थी। उपन्यासों के प्रकाशक भी पूछते हैं—कौन-कौन उपन्यास पहले छपा है? जब मैं बताता हूँ कि पहला ही है, इसे छपवाने आया हूँ तो वे कह देते हैं, 'हमारे पास बीसियों पहले ही रखे हैं। आप किसी अन्य प्रकाशक के पास ले जाइए।'

"इस कारण मैंने विचार किया है कि एक-दो उपन्यास पहले स्वयं ही छापूँगा।"

"इसके लिए रुपया कहाँ से लाओगे?"

"उसका प्रबंध कर रहा हूँ। इस समय मेरे पास दो सहस्र से अधिक रुपए हैं। कुछ और इकट्ठा कर लूँगा तो फिर छपवा लूँगा।"

"और यदि पुस्तक नहीं बिकी तो?"

"ऐसी संभावना तो नहीं है। इस पर भी कुछ काल तक तो तपस्या करनी ही पडेगी।"

मिसेज़ पाल समझ गई कि सुंदर उसकी सहायता की आवश्यकता

की परिधि से निकल चुका है। वह स्वयं डेढ़ सौ रुपए मासिक की नौकरी करती थी। उसने विचार किया था कि पचास-साठ की चपरासी की नौकरी वह सुंदर को दिलवा देगी अथवा यदि वह पढ़ना चाहे तो तीस रुपए का उसको स्टिपेंड दिलवा देगी। वह मन में विचार करती थी कि यह महान् विडंबना है कि फिलासोफी पर लिखनेवाला रिक्शा चलाता है और एक प्रोफेसर के बराबर कमाई कर लेता है।

मिसेज़ पाल सुंदर के भीतर और बाहर की भिन्नता को समझने का प्रयत्न कर रही थी कि सुंदर ने पूछ लिया, ''मिस्टर पाल कैसे हैं? वह यहाँ साथ नहीं आए क्या?''

इस प्रश्न पर मिसेज पाल चौंक उठी। वह बितर-बितर सुंदर का मुख देखने लगी। वास्तव में वह विचार कर रही थी कि सुंदर को बताए अथवा नहीं। कुछ विचारकर वह बोली, ''वे मुझको छोड़ गए हैं।''

''तलाक हो गया है?''

''नहीं, हम कैथोलिकों में यह नहीं होता। मिस सिमसन को तुम जानते ही हो। वही, जिसने झूठ बोलकर तुमको बेंत लगवाए थे। वह मिस्टर पाल से म्यूज़िक सीखने लगी थी। फिर दोनों में संबंध हो गया। सिमसन बहुत अच्छा गाती है। अब वे दोनों भारत के टूअर पर गए हुए हैं। वह गाती है और मिस्टर पाल उसके साथ बजाते हैं। सुना है, उनका यह टूअर कामयाब हो रहा है। मुझसे पिछले चार वर्ष से वे बोले नहीं हैं, न ही मेरे साथ रहते हैं।''

''बहुत ही दुःखद् घटना है यह!''

''मैं समझती हूँ कि मैं अब सुखी हूँ।''

''और कोई बेबी नहीं है, मदर?''

इस पर से मिसेज़ पाल की आँखें डबडबा आईं। सुंदर ने यह देखा। उसे अपने प्रश्न पर पश्चात्ताप हो रहा था। उसने कहा, ''क्षमा करें मदर! मुझको विदित नहीं था कि मैं यह पूछकर आपको दुःख पहुँचा रहा हूँ।''

मिसेज़ पाल ने अपने बैग में से रूमाल निकालकर आँखें पोंछ लीं और

उठकर बोली, "अच्छा, कभी-कभी मिलते रहा करो। रात को मेरे खाने का समय साढ़े आठ बजे होता है। तुम्हारा सदैव उस समय स्वागत है।"

[5]

वासंती पाल सुंदर को देख कुछ ऐसा अनुभव करने लगी थी कि मँझधार में तैरती हुई लकड़ी के लट्ठे का आश्रय पा गई है। यद्यपि वह यह समझ नहीं सकी थी कि एक रिक्शाचालक से वह क्या आशा कर सकती है? परंतु सुंदर का सुदृढ़ शरीर, सुलझी हुई बुद्धि और विकसित मन देखकर वह आश्वस्त अनुभव करने लगी थी।

स्कूल का मैनेजर मिस्टर फ्रैंकलिन उस पर वक्र-दृष्टि रखता हुआ प्रतीत होता था और वह अभी भी पर-पुरुष से संबंध बनाने में पाप मानती थी।

सुंदर ने मिस्टर पाल के विषय में पूछा तो उसके मन में पिछले आठ वर्ष की सब बातें स्मरण हो, उसके सामने नृत्य करने लगी थीं। उसे सुंदर के अल्मोड़ा के स्कूल से भाग जाने के दिनों की बात स्मरण हो आई थी। जब पुलिस थाने से यह समाचार मिला था कि सुंदर अपने फूफा के पास नहीं गया तो वह समझ गई थी कि सुंदर मैदान की ओर चला गया है और किसी प्रकार वह पुलिस को चकमा दे गया है।

सुंदर के विषय में बात मिस्टर पाल से भी हुई थी। उसने बताया था, "पुलिस को सुंदर का पता नहीं चला।"

इस पर पाल ने कह दिया था, "उसके लापता हो जाने से तो तुम अपने को विधवा हो गई समझने लगी हो।"

वासंती को क्रोध आ गया था। उसने कह दिया था, "शट् अप।"

इस पर मिस्टर पाल ने एक क्षण तक घूरकर उसकी ओर देखा था और फिर कह दिया था, "आज से मेरा तुमसे कोई संबंध नहीं रहेगा। मैं ऐसी स्त्री को अपनी पत्नी नहीं मान सकता जो पति को ऐसे अपशब्द कह सकती है।"

"पर अपशब्द तो आपने कहे हैं।"

"वह सत्य नहीं हैं क्या?"

"सत्य हो ही कैसे सकते हैं? वह अभी बालक मात्र है। उसका भला मुझसे क्या संबंध हो सकता है?"

"वह देखने में तो युवा प्रतीत होता है। मैं समझता हूँ कि वह है भी। साथ ही तुम्हारा उसे गोद में लेकर बैठना उसकी गालों को थपथपाना भी यही प्रकट करता है। तुमने मेरी गालों को तो कभी थपथपाया नहीं।"

"वह तुम मेरे साथ जो करते रहते हो।"

"तो अब नहीं करूँगा।"

मिसेज़ पाल समझ रही थी कि यह अस्थाई ईर्ष्या का परिणाम है, परंतु उस दिन के उपरांत पाल पृथक् कमरे में भीतर से बंद कर सोने लगा।

एक वर्ष तक इसी प्रकार से चलता रहा। इस समय उसे संदेह होने लगा कि उसका पति मिस सिमसन से विशेष अनुराग रखने लगा है। मिस सिमसन उसके पति से विशेष रूप से गाना सीखने लगी थी। वह गाना तो 'चैपल' में जाकर सीखती थी। इस बात की स्वीकृति मैट्रन से ले ली गई थी। गाना सीखने के उपरांत वह नित्य सायंकाल उसे अपने क्वार्टर में ले आता था और उसके साथ वहाँ चाय लेता था। वे दोनों चाय मिस्टर पाल के 'बैड-रूम' में लेते थे। प्रत्यक्ष रूप में तो वासंती से रोष प्रकट करने के लिए ऐसा किया जाता था, परंतु वासंती को संदेह हुआ तो उसने दोनों को रँगे हाथ पकड़ लिया।

उस दिन वासंती और पाल में झगड़ा हुआ और अंत में यह निश्चय हुआ कि वह भी जिससे चाहे संबंध बना सकती है, पाल आपत्ति नहीं करेगा।

परंतु वासंती ने इस पाप-कर्म से अपने को पृथक् रखना ही ठीक समझा। मिस सिमसन जब अच्छा गाने लगी तो पाल उसको लेकर सभा-समाजों में घूमने लगा। इससे उत्साहित हो दोनों ने पूर्ण भारत के 'टूअर' का प्रबंध कर लिया। वे प्रायः होटलों, थियेटरों में संगीत-समारोह करते

थे। ये प्रदर्शन यूरोपियन संगीत के नाम पर होते थे।

वासंती के विषय में यह प्रख्यात हो गया कि अब विधवा समान रहती है। इससे उसने अपनी बदली करवाने का यत्न किया। इसके लिए उसे कुछ भाग-दौड़ करनी पड़ी और पूना में वह नौकरी पा गई।

यहाँ पहुँच स्कूल के मैनेजर ने उसे अकेली आते देखा तो उसके मुख में लार टपकने लगी। यह बात तो मिसेज़ पाल ने पहले दिन ही देख ली थी और पिछले तीन महीने से मिस्टर फ्रैंकलिन मिसेज़ पाल के चारों ओर चक्कर कांटने लगा था।

मिसेज़ पाल को कुछ ऐसा अनुभव होने लगा था कि उसे या तो मैनेजर की भोग-सामग्री बनना होगा, अन्यथा स्कूल की नौकरी छोड़नी पड़ेगी। पहले वह भयभीत थी कि यदि नौकरी छूट गई तो क्या करेगी? परंतु अब सुंदर को देखकर वह समझने लगी थी कि भोजन का आश्रय तो मिल ही सकेगा। इस पर भी उसके मन में यह सब कुछ अभी एक अस्पष्ट-सी कल्पनामात्र ही थी।

[6]

इसके पश्चात् सुंदर सप्ताह में एक बार मिसेज़ पाल से मिलने के लिए जाने लगा। वह अब भी सुंदर से वैसा ही स्नेह रखती थी, जैसाकि उसने अल्मोड़ा में रखा था। जब भी सुंदर उसके साथ खाने पर बैठता, बातें होने लगतीं। मिसेज़ पाल यह अनुभव करती थी कि सुंदर अब बालक मात्र नहीं रहा। अब वह मानव-जीवन की गहनतम अभिव्यक्तियों को भली-भाँति समझने लगा है। एक-दो बार उसने उसको ईसाई धर्म में प्रविष्ट होने के विषय में संकेत किया तो ऐसी बातें चलीं कि वह अपने में से भी ईसाई धर्म की निष्ठा लुप्त होती हुई अनुभव करने लगी।

उसने ऐसे ही विवादों में एक दिन पूछ लिया, "तो तुम किस धर्म को मानते हो?"

"मानव धर्म को।"

"वह कौन-सा धर्म है ?"

"जो मनुष्यों ने बुद्धि से संगृहीत किया हुआ है। यह जगत् एक असीम स्थान है। वैज्ञानिक इसकी सीमाओं तक पहुँचने का यत्न कर रहे हैं। जितनी दूर वे पहुँचते हैं, यह जगत् उससे भी आगे और आगे ही दिखाई देने लगता है। आईन्स्टीन जैसे अद्वितीय प्रतिभावाले व्यक्ति ने भी इसकी सीमा ढूँढते-ढूँढते थककर कह दिया था कि यह एक 'सर्कल' में है। जो कुछ दूर और दूर दिखाई देता है, वह समीप का प्रतिबिंब मात्र ही है। मैं समझता हूँ कि यह विज्ञान की पराजय स्वीकार करने के समान ही है।

"इस कारण मुझे उपनिषद् की बात ही ठीक प्रतीत होती है। एक असीम, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, आनंदमय शक्ति है, जिसको ईश्वर, गॉड और खुदा इत्यादि नामों से हम मनुष्य जानते हैं। यह सृष्टि, सूर्य, चंद्र, तारागण इत्यादि उसी असीम आनंदमय शक्ति के रूप-रूपांतर हैं। वास्तव में हम भी उसीका एक रूपमात्र हैं। हम जैसी अनेक योनियाँ तो इस पृथ्वी पर दृष्टिगोचर हो रही हैं। इस पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य अनेकों स्थान हैं, जहाँ उसके अन्य रूप अर्थात् योनियाँ हैं। हम उनकी गिनती नहीं कर सकते।

"मनुष्य योनि पूर्ण आनदंमय नहीं है। इस पर भी हम उस आनंदमय ज्योति के पर्याप्त समीप प्रतीत होते हैं। हम उस शक्ति में घुल-मिल सकते हैं।

"अनेकों मीमांसकों का कथन है कि उस परब्रह्म-परमात्मा तक पहुँचने के लिए अभी कई सौ योनियाँ और हैं जिनको हमें पार करना पड़ता है और कई विद्वान् कहते हैं कि हम परमात्मा के सर्वथा समान हैं। दूसरे कहते हैं कि हममें और उसमें बहुत थोड़ा अंतर है।

"कुछ भी हो, हम लाखों योनियों से ऊपर उठ चुके हैं। इस पर भी जब हम उन्नति के शिखर पर चढ़ते-चढ़ते थक जाते हैं, तो फिर हम नीचे की ओर देखने लगते हैं। अपने से इतर् योनियों की कुछ सुविधाओं को देख, हम उनका अनुकरण करने लगते हैं।

"वे लोग जो ऊपर उठने में कठिनाई अनुभव करने लगते हैं, वे

अपने जीवन के सम्मुख पशुओं के-से जीवन को आदर्श बना लेते हैं। प्राय: नास्तिक जिनमें वर्तमान काल के कोटि-कोटि जनों के पूज्य कार्ल मार्क्स एक हैं, जो मनुष्य को पशुओं की कोटि में ले जाना चाहते हैं।

"कुछ नास्तिक हैं, जो मनुष्य को हिंसक पशुओं की भाँति रहने की प्रेरणा देते हैं। कुछ अन्य हैं, जो इसको पालतू पशु बनाना चाहते हैं।

"कुछ भी हो। इस प्रकार से विचार करनेवाले बेचारे उन्नति के मार्ग पर चलते-चलते थक गए प्रतीत होते हैं। उनके पाँव आगे चलने की अपेक्षा नीचे की ओर खिसकने लगे हैं। वे यह समझ कि उनका स्थान नीचे ही है, विचार करते हैं कि उनको सिंह, व्याघ्र इत्यादि बनना है अथवा गाय-बकरी।

"मैं मानव धर्म का अर्थ यह समझा हूँ कि ऊपर उठते हुए उस आनंदमय परिस्थिति में पहुँचना है, जिसके हम भूले-भटके हुए अंश हैं।"

मिसेज़ पाल इस मस्तिष्क की उड़ान पर हँस पड़ी। उसने कहा, "यही तो भगवान के इकलौते पुत्र यीशु मसीह कह गए हैं।"

"मैंने कब कहा है कि वे ऐसा नहीं कह गए? मैंने यह कहा है कि जितनी स्पष्टता से उपनिषद् में वर्णन है, वैसा कहीं अन्यत्र नहीं है।"

"क्या सब हिंदू ऐसा ही मानते हैं?"

"नहीं, इससे भिन्न विचारवाले लोग भी हैं। एक स्वामी दयानंद हुए थे। वे इस संसार का आदि-अंत तीन मौलिक पदार्थों में मानते थे। प्रकृति, आत्मा और परमात्मा। हममें प्रकृति यह शरीर है, आत्मा इसमें चेतनशक्ति है। परमात्मा सत्, चित्, आनंद है। आत्मा सत् और चित् और प्रकृति केवल चित् है।

"परंतु मदर! सब हिंदुओं में एक बात समान है। वह है वर्तमान अवस्था में, आत्मा की प्राणियों में उपस्थिति मानना। जितने भी चराचर जंतु हैं, सबमें आत्मा है। यह आत्मा है जिसका शरीर के साथ नाश नहीं होता। वह बार-बार जन्म लेता है, जब तक वह अपने ज्ञान और कर्म से इस संसार के मोह-जाल से मुक्त नहीं हो जाता। आत्मा प्राणी में कर्म का

करनेवाला है और उन कर्मों के फल का भोक्ता है। कर्म का फल टल नहीं सकता, वह अवश्य मिलता है। हम तपस्या और प्रायश्चित्त से अपने बुरे कर्मों से मिलनेवाले दुःख को कम कर सकते हैं। इस पर भी फल तो मिलता ही है।

"यह है हिंदू फिलॉसोफी का सार। हम सब हिंदू इस पर सहमत हैं। इस विचार से बौद्ध और जैन भी हिंदुओं की परिधि में आ जाते हैं।"

मिसेज़ पाल हिंदू फिलॉसोफी का ईसाई धर्म से मिलान कर रही थी। उसको स्मरण आ रहा था कि कैसे वह बचपन में जब अपने माता-पिता से विहीन हो गई थी और उसके गाँव में पादरी आया था जो उसको मिठाई खिलाता हुआ अपने साथ अनाथालय में ले आया था। वहाँ उसको पढ़ाया गया और ईसाई धर्म के संस्कार डाले गए। तत्पश्चात् वह स्वयं गाँव-गाँव में हिंदू-धर्म के विरुद्ध प्रचार करने जाया करती थी। वह हिंदुओं की मूर्ति-पूजा और राधा-कृष्ण की लीला की हँसी उड़ाया करती थी। उसको स्मरण था कि वह बहुत तर्क देकर गाँव के भोले-भाले लोगों को ईसाई होने की प्रेरणा दिया करती थी।

इस पर भी वह एक भी ऐसे स्त्री अथ्वा पुरुष के विषय में नहीं जानती थी, जो उसकी अथवा उसके साथियों की युक्ति मान ईसाई हुआ हो। प्राय: निर्धन लोग भोजन, अन्न, शिक्षा पाने के लोभ में ईसाई हो जाते थे। कोई-कोई ऐसे भी होते थे, जो पढ़ी-लिखी सुंदर लड़की अथवा लड़के से विवाह करने के लोभ में ईसाई होते थे। अधिकांश ईसाइयों की टीप-टाप, खर्चीला रहन-सहन देखकर धर्म परिवर्तन कर लेते थे।

आज सुंदर से बातें कर वह समझ रही थी कि वह उन दिनों कितनी मूर्ख थी जो इतनी विचारशील जाति को एक अंधविश्वास के गर्त में गिराने का यत्न करती रही थी। वह अब समझ रही थी कि तब वे सीधे-सादे ग्रामीण उसकी युक्तियों को सुनकर क्यों हँस देते थे? उनकी आत्मा में धँसी हुई गीता और उपनिषदों की फिलॉसोफी उसकी युक्तियों को कितना थोथा समझती होगी?

जब वह कहती थी—परमात्मा सातवें आसमान पर बैठा, हम प्राणियों के भले-बुरे को देखता है, तो वे लोग हँसते होंगे कि यह पढ़ी-लिखी लड़की इतना भी नहीं जानती कि आसमान कोई छत नहीं है। जब वह कहती थी कि यीशु मसीह परमात्मा का इकलौता बेटा था, उनकी शरण में जाने से मुक्ति मिलेगी, तो वे मन में कहते होंगे, सब संसार जब परमात्मा का बनाया हुआ है, तो यीशु मसीह उसका इकलौता बेटा कैसे हो गया?

इस प्रकार के विचारों के बवंडर में पड़, सुंदर से बार-बार मिल, अपने मान में उठ रहे संघर्षों पर वह विचार करती रहती थी। इससे दिन-प्रतिदिन उसकी निष्ठा ईसाई मत, जो सब धर्मों से श्रेष्ठ माना जाता था, पर से उठती जाती थी।

मिसेज़ पाल तीस वर्ष की आयु की स्त्री थी। सुंदर अभी बीस वर्ष का हुआ था। यदि वह कुछ छोटी अवस्था की होती तो सुंदर से विवाह करने का यत्न करती। वह उससे प्रेम करने लगी थी। परंतु जब-जब सुंदर उसको मदर कहकर पुकारता था, उसको अपने विचारों पर लज्जा आने लगती थी।

[7]

सुंदर की प्रथम पुस्तक छपने में एक वर्ष और लग गया। पुस्तक का नाम था 'आगे को'। यह पुस्तक उसने हिंदी में लिखी। यह उपन्यास था, जो सुंदर ने कई बार संशोधन करके लिखा था और फिर उसे उसने अपने खर्चे से छपवा दिया। इसे छपवाने में उसके लगभग पौने तीन हजार रुपए व्यय हो गए। इसको छपवाने के लिए उसको बंबई के छापेखाने से संपर्क स्थापित करना पड़ा। इसके अतिरिक्त उसने अपनी प्रकाशन-संस्था का नाम 'सर्वमंगल प्रकाशन' रखा और इसी नाम से पुस्तक छपवाई। उस घर, जिसमें वह रहता था, के बाहर एक 'सर्वमंगल प्रकाशन' का बोर्ड लगा दिया गया। पत्र-व्यवहार के लिए फॉर्म छपवा लिए और पुस्तक-

विक्रेताओं से पत्र-व्यवहार आरंभ कर दिया। सबसे पहले उसने बंबई, नागपुर, हैदराबाद, जबलपुर इत्यादि बड़े-बड़े नगरों में घूम-घूमकर, अपनी पुस्तक बिक्री की शर्त पर बेचने के लिए रखी। साथ ही वह स्थानीय समाचारपत्रों में विज्ञापन भी दे आया।

सुंदर जानता था कि उसकी पुस्तक अर्थयुक्त और रसमय है। एक बार पाठकों के हाथ में गई, तो फिर उसकी ख्याति फैलेगी। इस कारण वह मास में पंद्रह दिन रिक्शा चलाता था और उससे जो कुछ भी बचा पाता था, वह नगर-नगर घूमने और विज्ञापनों में लगा देता था।

छ: मास के अनथक प्रयत्न से उसने देखा कि बाजार में पुस्तक की माँग होने लगी है। इस समय उसने बिक्री की गई पुस्तकों का हिसाब किया तो विदित हुआ कि एक सहस्त्र के लगभग पुस्तकें बिक चुकी थीं। इसका रुपया बटोरने पर उसकी समझ में आया कि सब प्रकार के खर्चे निकालकर, दो सहस्र रुपए उसके बैंक में फिर जमा हो गए हैं।

अब उसने दूसरी पुस्तक लिखनी आरंभ कर दी। इस बार उसको स्वयं पर विश्वास था। उसने पुस्तक का नाम रखा—'पिछड़े हुए'। यह पुस्तक छपते और मार्केट में रखते-रखते एक वर्ष और व्यतीत हो गया। अभी तक वह अपने निर्वाह के लिए रिक्शा चलाता था। स्वाध्याय और लिखने के समय में से कुछ समय निकालकर, व्यवसाय की उन्नति करने में लगा रहता था।

उसकी दूसरी पुस्तक जब मार्केट में आई तो इस बार उसको उतना यत्न नहीं करना पड़ा जितना पहली पुस्तक के समय करना पड़ा था। अब तो पुस्तक पर समालोचनाएँ भी आने लगी थीं। इससे उत्साह में भरा वह तीसरी पुस्तक लिखने में लग गया।

इस सब समय में वह यदा-कदा मिसेज़ पाल से मिलता रहता था। मिसेज़ पाल भी सुंदर के व्यवसाय में रुचि ले रही थीं। जब तीसरी पुस्तक के छपवाने का समय आया तो उसको रिक्शा चलाने के लिए समय मिलना कठिन हो गया। इस समय तक प्रथम पुस्तक का द्वितीय संस्करण

निकलनेवाला हो गया था।

एक दिन वह मिसेज़ पाल के पास अपनी तीसरी पुस्तक की पांडुलिपि लेकर आया तो उसने पांडुलिपि को पढ़ने के लिए अपने पास रख पूछा, "अब कारोबार कैसा है?"

"मदर! आज अपनी प्रथम पुस्तक की अंतिम प्रति अपने स्टाक में से बेचकर आ रहा हूँ। मेरा अभिप्राय है कि अब मुझे उसका द्वितीय संस्करण छपवाना है।"

"रुपए-पैसे की क्या स्थिति है?"

"बैंक में इस समय तीन हजार से ऊपर हैं। बिक्री के रुपए भी आ रहे हैं। मैं समझता हूँ कि काम तो बढ़ेगा ही। एक बात और हो गई है। अब मुझे रिक्शा चलाने के लिए समय नहीं मिल पा रहा है।"

"इसकी अब आवश्यकता भी तो नहीं रही है न?"

"आवश्यकता तो एक वर्ष से नहीं थी, परंतु अब इसके लिए अवकाश नहीं है। आशा है, उसके बिना भी पूँजी बढ़ती चली जाएगी।"

"मैं समझती हूँ कि शीघ्र ही तुम्हें प्रकाशन-विभाग किसी अन्य के हाथ में दे देना पड़ेगा अन्यथा तुमको लिखने का भी अवकाश नहीं मिल पाएगा।"

इस संभावना की कल्पना कर सुंदर गंभीर विचार में पड़ गया। उसे चुप देख मिसेज पाल ने कहा, "यदि तुम्हारा कोई भाई अथवा लड़का होता तो काम बन जाता। अब क्या करोगे? किसी नौकर को रखोगे तो वह दिल लगाकर काम नहीं कर सकेगा।"

"यह तो करना ही होगा। उसको दिल लगाकर काम करना होगा।" फिर वह मुस्कराकर कहने लगा, "मदर! भाई, पुत्र बाजार में बिकते होते तो मैं फौरन खरीदकर ले आता।"

मिसेज़ पाल को भी हँसी आ गई। बोली, "एक काम करो सुंदर!"

"क्या मदर?"

"तुम विवाह कर लो। कोई पढ़ी-लिखी पत्नी ले आओ, जो तुम्हारे

व्यवसाय में हाथ बँटा सके।''

सुंदर हँस पड़ा। उसने कहा, ''अभी तो अपने खाने की ही चिंता नहीं मिटी। आप कहती हैं कि बीवी ले आऊँ। काम वह कुछ करेगी या नहीं, कहा नहीं जा सकता; हाँ, खाने को एक पेट और आ जाएगा।''

''तो ऐसा करो, अपनी मदर को काम पर लगा लो?''

''आपको? पर आप तो डेढ़ सौ रुपए मासिक वेतन पाती हैं। आपको मैं कैसे इतना वेतन दे सकता हूँ?''

''डेढ़ सौ नहीं, सुंदर! पौने दो सौ। परंतु तुम्हारे पास तो मैं अवैतनिक पार्ट-टाइम काम करूँगी।''

''नहीं, मदर! मैं आपको इस झमेले में घसीटना नहीं चाहता। हाँ, एक स्वप्न मेरे मन में है। जब आप स्कूल से रिटायर हो जाएँगी, तब तक मैं एक बाल-बच्चेदार आदमी बन जाऊँगा। उस समय मदर को अपने घर में ले जाकर, उसके ऋण से उऋण होने का यत्न करूँगा।''

मिसेज़ पाल हँस पड़ी। हँसते हुए उसकी आँखों में से आँसू छलक आए। अपने आँसू पोंछते हुए उसने कहा, ''परंतु मैं तो बूढ़ी होने से पूर्व ही अपने बेटे के घर में जाना चाहती हूँ।''

''सच?'' सुंदर ने आनंदोल्लास में कहा, ''तो मदर! मुझे आशीर्वाद दो कि मैं ऐसा कर सकूँ और शीघ्र ही अपनी माँ की आशाएँ पूर्ण करूँ।''

अगले दिन सुंदर ने अपनी रिक्शा बेच डाली और प्रातः से सायंकाल तक वह अपनी पुस्तकों के काम में लग गया।

[8]

अब उसको पाठकों के पत्र आने लगे थे। कई लिखनेवाले उसकी प्रशंसा करते थे। कई अनेकानेक विषयों पर उससे प्रश्न पूछते थे। कुछ ऐसे लिखनेवाले भी थे जो उसकी कहानी के परिणाम से असंतोष प्रकट करते थे।

एक दिन बहुत ही बढ़िया लिफाफे में एक पत्र आया। लिफाफा

खोलने पर बहुत ही सुंदर कागज पर, बढ़िया सुलेख में पत्र लिखा हुआ मिला। सुंदर ने पत्र पढ़ने से पहले भेजनेवाले का नाम और पता देखा। यह सब देख वह स्तब्ध रह गया। पत्र भावना का लिखा हुआ था। पता सेठ यादवदेवजी का था। कितनी देर तक वह यह विचार करता रहा कि भावना उसको पहचान गई है अथवा नहीं। इसका निर्णय तो पत्र पढ़ने से ही हो सकता था और वह पत्र पढ़ने में झिझक अनुभव कर रहा था। वह विचार करता था कि यदि उसके पिता को यह ज्ञान हो गया कि लेखक सुंदर उनका नौकर सुंदर ही है, तब वे क्या करेंगे?

उसने पत्र पढ़ा। लिखा था—"चढ़ा चाँद छिपा नहीं रह सकता। उसकी शीतलता, सुंदरता और सरलता सबको अनुभव होती है। जो आँखें नहीं रखते, वे भी अनुभव करते हैं कि किसी प्रकार का रस-संचार उनके शरीर में हो रहा है।

"यही बात एक प्रतिभाशाली लेखक की है। यह तो निर्जीव चाँद की भाँति अपनी कुमुदनी का प्रसार करता है। वह नहीं जानता कि किस-किसके हृदय को काम-बाणों से बींध रहा है अथवा किस-किसके विरहजनित संताप को सुरभित कमलदलों की भाँति शांत कर रहा है। अनेकों पाठक ऐसे भी हैं, जो अज्ञानतावश नहीं जानते कि उनमें रस का संचार भी, चाँद-रूपी लेखक की कौमुदी देती है।

"कई पाठक बालक की भाँति उस चाँद को पकड़ने के लिए उछल-कूद मचाने लगते हैं। परंतु पकड़ पाना तो दूर, उस दूरी में, जिस पर वह रहता है, कुछ कर सकना भी उनके लिए संभव नहीं होता।

"इस पर भी बालक हाथ बढ़ा उस ओर जाने का यत्न करता रहता है। एक बात तो है। वह चाँद की कौमुदी है, जो उस बालक के मन में आह्लाद उत्पन्न करती है।

"आपकी द्वितीय पुस्तक तो पहले से भी अधिक रुचिकर लगी। कदाचित् चाँद की एक कला बढ़ गई है। इन बढ़ती कलाओं को देखकर तो पूर्णचंद्र की कला देखने की लालसा जागृत हो उठी है। उत्तरोत्तर बढ़ती

कलाओं में सुंदर लेखक को देखने के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा करती रहती हूँ। आप आगामी कला में कब युक्त होनेवाले हैं ?

"जहाँ पूर्ण कलायुक्त चंद्र को देखने की लालसा मन में भर रही है, वहाँ कलाविहीन चंद्र कहाँ था और कैसे कलायुक्त होने लगा है, जानने की इच्छा जाग पड़ी है।

"लेखक महोदय अपना इतिहास जिज्ञासु को लिखने की कृपा करें।

"मैंने आपकी पुस्तकों को इतना पंसद किया है कि मैं अपनी बीसियों सखियों को उन्हें उपहार के रूप में दे चुकी हूँ। मेरी प्रार्थना है कि पत्रोत्तर अवश्य दें। वास्तव में उत्तर में एक ही बात तो जानने की इच्छा व्यक्त की है और वह है आपका संक्षिप्त जीवन-परिचय। उसमें इसका विशेष रूप से उल्लेख हो कि आप लेखक किस प्रकार बने। पत्र लिखनेवाली भी बहुत उच्च अभिलाषाएँ रखती है और एक सफल लेखक से प्रोत्साहन पाना चाहती है।

—भावना"

सुंदर को विश्वास हो रहा था कि भावना के मन में अभी निश्चय नहीं है कि यह वही सुंदर है, जो उससे अंग्रेजी और हिंदी पढ़ता रहा है। उसको संदेह तो अवश्य हुआ है। वह विचार करता था कि उसके अज्ञातवास का काल समाप्त हुआ है अथवा नहीं। इस समय उसकी तीसरी पुस्तक प्रेस में थी। मिसेज़ पाल ने पढ़कर निर्णय दे दिया था कि वह पिछली दो पुस्तकों से भी बढ़कर है। इससे वह यह समझने लगा था कि अब वह स्वतंत्र मानयुक्त जीवन व्यतीत करने के योग्य हो गया है। अब रत्नबाबू को उसके साथ बैठकर खाना खाने में अपमानित होने का कोई कारण नहीं रह गया है और वह स्वयं भी सेठजी से हाथ मिलाने में किसी प्रकार के संकोच का कारण नहीं देखता था। इस पर भी यदि सेठजी के परिवार के लोग उससे घृणा करें तो उसके लिए चिंता का विषय नहीं है। वह अपनी दुनिया सर्वथा पृथक् बना रहा है और वह सुंदर बन रही है। उसको एक माँ मिल गई थी। अब बीवी भी मिल जाएगी।

इतना विचारकर उसने स्वयं को छिपाकर रखने में कोई कारण नहीं समझा। उसने भावना के पत्र का उत्तर देते हुए लिखा—

''सुश्री भावना देवी जी,

''यह जानकर बहुत ही प्रसन्नता हुई कि आपने मेरी दो पुस्तकें पढ़ी हैं और पसंद की हैं। इससे मेरा साहस कई गुना बढ़ गया है। मेरी तीसरी पुस्तक 'नव जीवन' मुद्रण के लिए चली गई है। आशा करता हूँ कि वह अगले मास आपके हाथ में होगी।

''रहा आपके प्रश्न का उत्तर। एक ग्यारह वर्ष का बालक अल्मोड़ा के बस के अड्डे पर खड़ा, सेठ यादवदेव विक्रमजी द्वारा नौकर रखा गया। सेठजी उसे बंबई ले आए। नौकरी करता हुआ वह सेठजी की लड़की से पढ़ता भी रहा।

''शेष तो आप जानती हैं।

''आपकी शिक्षा के फलस्वरूप भगवान् की असीम कृपा से वह सुंदर अब लेखक हो गया है।

''यह लेखन-कार्य कब पूर्णता को प्राप्त होगा, कहना कठिन है। पूर्णता तो भगवान् का गुण है। उसको कदाचित् इस जन्म में प्राप्त करना कठिन होगा।

''आशा है आपकी माताजी तथा पिताजी स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे। उन दोनों आदरणीयों को मेरा करबद्ध प्रणाम कह देना। मैंने उनका अन्न खाया है और उनकी सुखद् छाया के नीचे पलकर मैंने अद्भुत उन्नति की है। इसके लिए मैं सदा उनका आभारी रहूँगा।

''यदि मुझ जैसा तुच्छ व्यक्ति कभी उनकी कोई सेवा कर सका, तो मुझको अति प्रसन्नता होगी।

—भवदीय
सुंदर''

चतुर्थ परिच्छेद

[1]

सुंदर भावना से और पत्र पाने की आशा करता था। वह समझता था कि अधिक-से-अधिक उस पत्र में सेठजी की ओर से यह आशा प्रकट की जाएगी कि वह यदि कभी बंबई आए तो उनसे अवश्य मिले। वह यह भी आशा करता था कि रत्नलाल और मणिलाल का भी कुछ समाचार भावना के पत्र में आएगा।

परंतु पंद्रह दिन तक कोई पत्र नहीं आया। पुस्तक छपकर जिल्द-साज के यहाँ चली गई थी और वह इसके लिए बंबई जाना चाहता था। उसके पास लगभग चार सौ पुस्तकों के ऑर्डर आ गए थे और वह उनको बंबई से ही भिजवा देने का प्रबंध करना चाहता था। वह मन में विचार कर रहा था कि यदि भावना का निमंत्रण आ जाता तो वह निःसंकोच उससे मिलने जाता। पुरानी स्मृतियाँ उसके मन में उभर आई थीं।

सुंदर ने जिल्दसाज को एक पत्र लिखकर पूछा था कि किस दिन पुस्तक तैयार कर वह दे सकेगा। वह उसी दिन बंबई जाना चाहता था। उत्तर की प्रतीक्षा में वह ठहरा हुआ था।

अब उसने पुस्तकों के स्टाक के लिए अपने घर के नीचे की दो दुकानें भाड़े पर ले ली थीं। वहीं उसने अपना कार्यालय भी बना लिया था और गोदाम भी।

वह मध्याह्न के भोजन के लिए जानेवाला था। अभी तक उसने कोई नौकर नहीं रखा था। स्वयं ही पार्सल बनाता, बाईसिकल के पीछे लादकर

ले जाता और रेल पर अथवा डाकखाने में बुक करवा आता था। स्वयं ही चिट्ठी-पत्री करता था और स्वयं ही हिसाब-किताब का काम भी करता था।

अतएव भोजन के लिए जाते समय दुकान बंद कर जाना होता था। वह अभी दुकान बंद कर ही रहा था कि एक बहुत बड़ी मोटरकार उसकी दुकान के सामने आ खड़ी हुई। वह उत्सुकता से देखने लगा कि कौन आया है। उसमें से सेठ यादवदेव उतर रहा था। सुंदर लपककर बढ़, उसके चरण स्पर्श करने लगा।

सेठ ने उसको उठाकर गले से लगा लिया और पीठ पर हाथ फेर आशीर्वाद दे कहा, "सुंदर! आज चार वर्ष होने को आ रहे हैं, किंतु तुमने कभी भी अपना समाचार तक नहीं दिया।"

सुंदर मुस्कराते हुए सेठ के मुख की ओर देखकर बोला, "बालक चाँद का पकड़ने का व्यर्थ यत्न नहीं करना चाहता था।"

सेठ ने भावना का पत्र और उसके उत्तर में सुंदर की ओर से भावना को भेजा गया पत्र, दोनों ही पढ़े थे। इस कारण वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला, "दुकान बंद कर किधर जा रहे थे?"

"भोजन करने।"

"कहाँ करते हो भोजन?"

"होटल में।"

"और रहते कहाँ हो?"

"रहने का स्थान यहीं ऊपर ही है। ये दो दुकानें हैं।"

"चलो तुम्हारा घर और दुकान तो देख लें।"

सुंदर ने दुकान खोलकर सेठजी को अपना स्टाकरूम और कार्यालय दिखाया। कार्यालय की मेज पर बैंक की पासबुक पड़ी हुई थी। सेठ ने मुस्कराते हुए पासबुक का निरीक्षण कर लिया। उस समय सुंदर के बैंक में दो सहस्र सात सौ अस्सी रुपए जमा थे।

कार्यालय देखने के पश्चात् सेठ सुंदर का घर देखने के लिए चल

पड़ा। उसके कमरे में सोने के लिए लकड़ी का तख्त था जिस पर चटाई बिछी थी। तकिए के स्थान पर पुस्तकों का ढेर देखकर सेठ खिलखिलाकर हँस पड़ा।

जब सुंदर ने इस हँसी को समझने के लिए सेठ के मुख की ओर देखा, तो सेठ ने उसकी पीठ पर हाथ फेर, उसको शाबाशी देते हुए कहा, "मेरी आशाओं से अधिक है।" फिर बोला, "अच्छा चलो। मैं भी प्रातःकाल का चला हुआ हूँ। भोजन नहीं किया है। मैं भी तुम्हारे साथ ही भोजन करूँगा।"

"आपके लिए तो मेरा होटल उपयुक्त नहीं होगा।"

"परंतु मेरा होटल तो तुम्हारे लिए उपयुक्त होगा न?"

लज्जित हो सुंदर मौन रहा। सेठ और सुंदर कार्लटन होटल में जा बैठे। ड्राइवर को एक रुपया देकर खाना खाने के लिए भेज दिया गया।

जब होटल में खाना परोसा जाने लगा तो सेठ ने बात चला दी। उसने कहा, "मेरी दृष्टि में एक लेखक कभी लखपति नहीं बन सकता, किंतु मेरी आकांक्षा तुम्हें लखपति देखने की है।"

"इससे क्या होगा?" सुंदर ने समझते हुए भी न समझने का भाव बनाते हुए कहा। उसने अपने कथन की व्याख्या करते हुए कहा, "एक परिवार के सुख और आराम के लिए तो लाखों रुपए नहीं चाहिए। उसका निर्वाह तो कम में भी हो जाता है।"

"मैं समझता हूँ कि एक अच्छा लेखक एक मिल के मालिक से अधिक जनता का उपकार कर सकता है। यदि एक मिल का मालिक लाखों रुपए कमा सकता है तो एक लेखक क्यों नहीं? परंतु आज समाज में कुछ वैचित्र्य है। इसलिए मैं पूछता हूँ कि तुम लाखों क्यों नहीं पैदा कर सकते?"

"यह तो समाज की दुर्व्यवस्था के कारण है। इसमें एक कारण और भी है। वह है उत्पादन और माँग की बात। लेखकों का उत्पादन माँग से अधिक हो रहा है। आज समाज में पढ़नेवालों की संख्या कम है और पढ़े

हुओं में बेकारी अधिक होने से लेखकों की संख्या बढ़ रही है।''

''तुम ठीक कहते हो, सुंदर! परंतु एक बात और भी है। हमारे देश में प्रकाशक इतने बुद्धिमान् नहीं हैं कि वे अच्छे-बुरे लेखक में भेद-भाव कर सकें और सरकार अपनी पार्टी के विचारवाले लेखकों का पृष्ठपोषण करती है।''

सुंदर सेठ के विश्लेषण से सहमत नहीं था। उसका कहना था, ''प्रजातंत्रात्मक राज्य-पद्धति में सरकार प्रजा को अपने विचार का समझती है और उस विचार के लेखकों को प्रोत्साहन देना प्रजा के विचारों का समर्थन मानती है।

''जो लेखक प्रजा में किसी नवीन अथवा प्रजा की रुचि के विपरीत विचार उपस्थित करता है, वह प्रजा, प्रकाशक अथवा राज्य के पृष्ठपोषण की आशा में नहीं करता। वह तो निर्धन रहेगा ही। उसको निर्धन रहने के लिए तैयार रहना चाहिए।''

''लेखक क्या आशा करता है और क्या नहीं करता, इसकी बात मैं नहीं कर रहा। मैं देश की सरकार और धनी-मानी लोगों के कर्त्तव्य की बात कहता हूँ।''

''इस युग की विडंबना यह है कि हम प्रत्येक बात को राजनीति की कसौटी पर घिसते हैं। मनुष्यता के विचार से नहीं देखते।''

खाना समाप्त हुआ तो सेठ ने होटल का बिल देकर सुंदर से कहा, ''चलो तुम्हारे घर चलें। मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ।''

''आइए।''

दोनों मोटर में सवार हो पुनः सुंदर के कमरे में जा पहुँचे। वहाँ सोने के लिए लकड़ी की चौकी, जिस पर चटाई बिछी थी, उस पर दोनों बैठ गए और बातचीत होने लगी।

सेठ ने बताया, ''भावना ने तुम्हारी प्रथम पुस्तक पढ़ी तो उसने मुझे देकर कहा, 'पिताजी, इसको अवश्य पढ़िए।' मैं उपन्यास नहीं पढ़ा करता। परंतु जब भावना ने आग्रह किया तो पढ़ने लगा। पुस्तक को आरंभ से

लेकर अंत तक पढ़ गया। जैसे अपने जीवन से पृथक् होकर स्वप्न में बनते-बिगड़ते चित्र देखने में कोई लीन हो ज़ाता है, वैसा ही पुस्तक पढ़ते समय हुआ। पुस्तक पढ़ने के कई दिन पीछे तक भी, उसमें लिखी घटनाओं के तारतम्य पर मैं मनन करता रहा। इसके कुछ दिन पश्चात् भावना ने तुम्हारी दूसरी पुस्तक दी, तो मैं पुस्तक-विक्रेताओं से तुम्हारी पुस्तक की बिक्री के विषय में पूछने लगा। उनसे सदा संतोषजनक उत्तर पा मैं प्रसन्न था कि जनता एक अच्छे लेखक का मान करती है। एक दिन भावना ने मुझसे कहा कि पुस्तकों का लेखक हमारा सुंदर ही है। उसने अपना और तुम्हारा पत्र दिखाया। तब से ही मैं विचार कर रहा था कि तुम्हारे विषय में क्या किया जाए। मेरा अनुमान था कि तुम इस समय आर्थिक संकट में होगे। तुम तीसरी पुस्तक प्रकाशित करने का विज्ञापन दे रहे हो। अत: मैं सामयिक सहायता के लिए पाँच सहस्र रुपए, जो तुम्हारा ही हमारे पास जमा था, लेकर आया हूँ।

''यहाँ आकर मुझको पता चला है कि स्थिति उतनी संकटमय नहीं है, जितनी मैं समझता था। इस पर भी मुझे तुम्हारी अवस्था पर संतोष नहीं है। हम दोनों को मिलकर कोई उपाय ढूँढना चाहिए, जिससे मुझको संतोष हो सके।''

''मैं एक-दो दिन में बंबई आनेवाला हूँ। अभी मैं अपने जिल्दसाज़ के पत्र की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तब मैं वहाँ तीन-चार दिन रहूँगा और आपके प्रस्ताव पर विचारकर लिया जाएगा।''

''भावना अब बी०ए० पास कर चुकी है। वह तुमसे मिलने के लिए मेरे साथ आनेवाली थी; परंतु मैंने ही मना कर दिया। मैं समझता था कि यहाँ से तुमको ही साथ ले चलूँगा।''

''मैं आपकी आज्ञा को कैसे टाल सकता हूँ? मैं आपके साथ ही चलूँगा।''

सेठजी ने उसको रुपए देते हुए कहा, ''ये अपने पाँच सहस्र रुपए रख लो, हिसाब-किताब फिर होता रहेगा।''

"ये रुपए मेरे कैसे हैं? मेरा वेतन तो आपने पहले ही भिजवा दिया था।"

"यह तुम्हारे कमीशन के रुपए हैं, जो प्रतिमास तुम भावना की माँ को दे दिया करते थे। वह उन रुपयों को बैंक में जमा करा देती थी।

"हमारा विचार था कि तुम पूना में आकर अपना पता भेजोगे। तुम्हारे बंबई से चलते समय हमने तुम्हारे पीछे एक आदमी भी तुम्हारी गतिविधियों को देखने के लिए भेजा था, परंतु तुमने शायद उसे चोर समझकर चकमा दे दिया। तत्पश्चात् बहुत यत्न करने पर भी हम तुम्हारा पता नहीं पा सके। अन्यथा यह रुपया हम तुम्हें देकर, पूना में तुम्हारे लिए एक कपड़े की दुकन करवानेवाले थे।"

सुंदर चकित रह गया। उसने रुपयों का चैक वापस करते हुए कहा, "यह रुपया मेरा नहीं है। इस पर भी यदि आवश्यकता पड़ी, तो आपसे सहायता लूँगा। परंतु यह सहायता लेनी भी बंबई चलकर योजना बनाने के पश्चात् ही निर्णय की जा सकेगी।"

सुंदर ने अपना सूटकेस उठाया और सेठजी के साथ हो लिया।

[2]

जब से सुंदर सेठ तथा भावना के नाम पत्र देकर बंबई से चला था, तब से सेठ के परिवार में भारी परिवर्तन हो रहे थे। रत्नलाल तो अगले दिन ही मकान छोड़कर होटल में रहने के लिए चला गया। उसने एलफिंस्टन होटल में एक कमरे का सैट दो सौ रुपए माहवार पर किराए पर ले लिया और लगभग तीन सौ रुपए माहवार खाने के लिए देकर रहने लगा। रत्नलाल ने अपने पिता को लिख दिया कि वह अपने चाचा का मकान छोड़, होटल में रहने लगा है। उसके पिता ने इसका कारण पूछा और इससे संबंधित एक पत्र अपने भाई को भी लिखा।

सेठ यादव ने इसके उत्तर में केवल यह लिखा कि रत्नलाल की आय इतनी अधिक हो गई है कि उसको घर का साधारण खाना और रहन-

सहन पसंद नहीं है। इसके विपरीत रत्नलाल ने अपने पिता को भावना के विषय में बहुत कुछ लिखा था।

यह सब पढ़ रत्नलाल का पिता रघुवीर बंबई चला आया। वह पहले भी, जब आता था, अपने भाई के पास ही ठहरा करता था। इस बार भी उसने यही उचित समझा। रत्नलाल ने लिखा था कि भावना घर के एक नौकर से अनुचित संबंध रखती प्रतीत होती है। कम-से-कम उसका उसके प्रति गहरा लगाव तो है ही। उसके पिता उसका विवाह करना नहीं चाहते और बात इतनी बिगड़ गई है कि मैंने वहाँ रहना उचित नहीं समझा।

रघुवीर ने सुंदर को देखा था और सुंदर की सूरत-शक्ल तथा उसका भावना से मेल-जोल का विचार कर, रत्नलाल की बात पर विश्वास कर लेना कोई कठिन बात नहीं थी। वह जब बंबई आया तो सेठ उस समय घर पर नहीं था। वह 'मिल' को गया हुआ था। भावना स्कूल गई थी, राधा घर पर थी। सेठ ने भाभी से रत्नलाल के विषय में पूछा तो उसने सारा वृत्तांत बता दिया।

उसका कहना था, "सुमित्रा अपने भाई की सगाई भावना से करना चाहती थी। भावना के पिता इस बात को मान नहीं रहे थे। इस पर झगड़ा शुरू हुआ था। मुझे तो रत्नलाल का साला मोहन पसंद है, किंतु मेरी सुनता कौन है इस घर में?"

रघुवीर ने भी मोहन को देखा था। वे पाँच भाई और दो बहिनें थीं। मोहन के पिता की सराफे की दुकान थी। सोना-चाँदी का व्यापार होता था। इस पर भी परिवार इतना लंबा-चौड़ा था कि बँटवारा होने पर किसी के पल्ले कुछ विशेष नहीं आता। साथ ही मोहन शरीर से भी अति दुर्बल प्रतीत होता था। इस समय रघुवीर को सुंदर की याद आ गई। उसने पूछा, "बहू, वह तुम्हारा नौकर सुंदर कहाँ है?"

"वह तो नौकरी छोड़ गया है।"

"क्यों?"

"रत्नलाल ने भावना के पिताजी को भावना और सुंदर के विषय में

कुछ बताया। इससे उनके मन में सुंदर के विषय में जाँच-पड़ताल करने की इच्छा उत्पन्न हो गई। इससे पहले तो सुंदर के भावना से किसी प्रकार के संबंध की बात नहीं उठी थी। जब रत्नलाल के साले वाली बात नहीं मानी गई, तो उसने यह लांछन लगा दिया। भावना के पिता ने देख-रेख और जाँच की तो उनको सुंदर एक योग्य और ईमानदार तथा पढ़ा-लिखा लड़का प्रतीत हुआ। इतना ही नहीं, वे उसे दामाद बनने के योग्य भी समझने लग गए। वे उसको मिल में किसी अच्छे काम पर नौकर कर, उसकी योग्यता की परीक्षा लेना चाहते थे। यह रत्नलाल को पता चल गया। इससे चाचा-भतीजे में तू-तू मैं-मैं हो गई।

''इस झगड़े को सुंदर ने भी देखा और इसका कारण समझ, एक रात वह चुपचाप यहाँ से चला गया। अब हममें से कोई नहीं जानता कि वह कहाँ है।''

''क्या यह सत्य है कि भावना और सुंदर में कोई संबंध था?''

''मैं नहीं जानती। मैंने ऐसी कोई बात कभी नहीं देखी, जिससे मैं इस परिणाम पर पहुँचती। आपके भाई ने क्या देखा, यह उन्होंने मुझे बताया नहीं। वह केवल इतना कहते थे कि सुंदर बहुत ही योग्य और चरित्रवान् लड़का है। वे कहते थे कि उसको मिल में किसी अच्छे पद पर लगाकर, उसको व्यापार का ज्ञान करवाएँगे। जब वह कमाने-खाने लगेगा तो उसका विवाह भावना से कर देंगे।''

''बहू! क्या तुमको भी यह बात पसंद थी?''

''मैं एक औरत हूँ, घर से बाहर की बात मैं क्या जानूँ! मुझको इस संबंध में केवल यह आपत्ति प्रतीत होती थी कि सुंदर अपनी बिरादरी का नहीं है। वह अपने देश का भी नहीं है। हम यह भी नहीं जानते कि वह कौन-सी जाति का है और किस धर्म को मानता है। सुना है बचपन में वह ईसाइयों के अनाथालय में रहा है। क्या जाने उसके मन में ईसाई-धर्म की छाप हो।''

राधा के कथन से लाला रघुवीर को चाचा-भतीजे में इतने बड़े

झगड़े का कारण, जिससे भतीजा घर छोड़ आठ-नौ सौ रुपए महीने का खर्चा सिर पर बाँध बैठा हो, समझ में नहीं आया।

मध्याह्न के समय सेठ यादव घर पर खाना खाने के लिए आया तो अपने भाई को वहाँ देख, प्रसन्न हो, चरण-स्पर्श कर बोला, "दादा, कैसे आए? आने की सूचना भी नहीं दी। स्नानादि किया है अथवा नहीं?"

"हाँ, स्नान कर चुका हूँ। तुम्हारी बहू से तुम्हारे और रत्नलाल के झगड़े की कथा, जैसी वह बता सकी है, सुन चुका हूँ।

"देखा यादव! रत्नलाल भाग्य से एक बड़ी सरकारी पदवी पर पहुँच गया है। हमको उसके कथन का आदर करना चाहिए। हम व्यापारी लोग सरकारी अफसरों से झगड़ा नहीं कर सकते।"

"दादा! तुम ठीक कहते हो। मुझसे कहो तो मैं उससे क्षमा माँग लेता हूँ, परंतु एक बात विचार कर लो। पिताजी ने अपने जीवन-काल में केवल एक ही सीख दी थी। वह यह कि सत्य का व्यवहार करने से मनुष्य सुखी रहता है। रत्नलाल ने झूठ का आश्रय ले लिया है। इससे मुझे उससे किसी प्रकार के भी कल्याण की आशा नहीं है।"

"क्या झूठ कह रहा है वह?"

"सबसे पहले उसने भावना की सगाई अपने साले मोहन से करवाने के लिए मुझे झूठ बताया कि वह बी०ए० पास कर चुका है। दादा! मेरे मन में सरकारी डिग्रियों का कुछ भी महत्त्व नहीं। इस पर भी रत्नलाल ने मुझे धोखा देना चाहा। वह स्वयं सरकारी नौकर है। कदाचित् उसके मन में यूनिवर्सिटी की डिग्रियों की भारी महिमा है। इस कारण उसने अपने चाचा को भी अपनी भाँति मूर्ख मान, यह झूठ बोल दिया।

"इसके अतिरिक्त उसने भावना पर झूठा लाँछन लगाया कि उसका सुंदर से अनुचित संबंध है। जब इसे वह सिद्ध नहीं कर सका तो सुंदर पर झूठा आरोप लगाया कि वह चोर है और मुझको लूट रहा है।

"अंत में जब सुंदर यहाँ से गया तो उसने यह विख्यात कर दिया कि वह मेरी चोरी करके भाग गया है।

''दादा! मेरा धन अपने साले को दिलवाने के लिए यह सब झूठ का आश्रय लिया गया है। मैं इसको न तो अपने लिए और न ही उसके लिए हितकर समझता हूँ। मैंने ही उसको कहा था कि वह मुझसे क्षमा माँगे अन्यथा मेरा घर छोड़कर चला जाए। उसने घर छोड़ चला जाना ही उचित समझा है।''

इस पर रघुवीर को अपने छोटे भाई यादव के घर से भाग आने की घटना स्मरण हो आई। यादव उन दिनों सोलह-सत्रह वर्ष का था और रघुवीर बीस का। रघुवीर को क्लब में जुआ खेलने की लत लग गई थी। एक बार वह लगभग एक हजार रुपए हार गया तो पिताजी की जेब से एक हजार रुपए के नोट चुराकर कर्ज चुका आया।

पिता को जब पता चला तो उसने इसके विषय में पूछताछ शुरू की। रघुवीर ने झूठ बोलकर कह दिया कि उसने यादव को कोट के पास खड़े देखा था। इस पर यादव को बहुत पीटा गया। यहाँ तक कि उस मार से वह दो दिन तक ज्वर-ग्रस्त रहा। जब वह ठीक हुआ तो घर छोड़ बंबई चला आया। पिता ने समझा कि चोर पुत्र घर से भाग गया है, यह ठीक ही हुआ। रघुवीर को संतोष था कि चोरी के दंड से वह बच गया।

यादव बंबई में एक भले और समझदार मिल-मालिक की नौकरी पा गया। सत्य और ईमानदारी का आश्रय पा वह उन्नति करता-करता पंद्रह वर्ष में स्वयं एक मिल खोल बैठा।

उसको उन्नति करते देख राधा के पिता ने, जो उसके साथ ही मिल की नौकरी करता था, उसको अपना दामाद बना लिया। विवाह तो मिल मालिक बनने के पश्चात् हुआ। विवाह के समय यादव तीस वर्ष की आयु का हो चुका था। यादव का व्यवहार सबके साथ सत्य और ईमानदारी का रहा था।

बंबई के वातावरण में मनोविनोद का भूखा यादव एकाकी जीवन से ऊबकर कभी इधर-उधर वासना-तृप्ति करता रहता था। इस पर भी व्यापार में वह कभी पथच्युत नहीं हुआ। विवाह के पश्चात् तो वह ढीले जीवन को

छोड़, अपनी पत्नी में निष्ठा का जीवन व्यतीत करने लगा था।

राधा को एक बार अपने पति के अवांछित जीवन का ज्ञान हुआ तो यादव ने अपना सारा जीवन-वृत्तांत उसके सम्मुख खोल दिया। इससे, पहले तो राधा को दुःख हुआ, परंतु अपने पति का पिछला जीवन सुन वह संतोष कर बैठी।

घर में भावना उत्पन्न हुई तो यादव ने अपने बड़े भाई रघुवीर से सुलह कर ली। रघुवीर तो अपने झूठ की बात भूल गया था, परंतु यादव को सब बात स्मरण थी। इस पर भी जब भाई ने देखा कि यादव उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है, तो सुलह कर बैठा।

इस समय पिता का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका था। यादव ने भी पिता के अंतकाल में मन का रोष निकाल, उनकी सेवा-सुश्रूषा करने का यत्न किया।

भावना के उत्पन्न होते समय राधा बहुत बीमार हो गई थी और डॉक्टरों की सम्मति से राधा का गर्भाशय निकलवा दिया गया था। इसके पश्चात् भावना के अतिरिक्त राधा की अन्य कोई संतान नहीं हुई। राधा ने कई बार कहा कि संतान के लिए उसका पति पुनः विवाह कर ले, परंतु यादव को संतान में रुचि नहीं थी। परिणामस्वरूप भावना का पालन-पोषण बहुत लाड़-प्यार से होने लगा।

भावना जब पाँच वर्ष की थी, तभी रत्नलाल बंबई में नौकर हुआ था। यह अपने चाचा के मकान में ही रहने लगा। रत्नलाल ने इकॉनोमिक्स में पी-एच०डी० की डिग्री प्राप्त की थी। इस उपाधि के बल तथा मेल-जोल के कारण रत्नलाल वेग से उन्नति करने लगा। वह 'रिजनल ऐक्सपोर्ट ऑफिसर' बन गया। कुछ ही दिनों में उसका विवाह पोर्ट ट्रस्ट के एक अधिकारी की लड़की से हो गया।

विवाह हुए छः वर्ष व्यतीत हो गए थे, किंतु उनकी कोई संतान नहीं हुई। इससे सुमित्रा बहुत चिंतित रहने लगी। उसका स्वभाव भी बहुत चिड़चिड़ा और स्वार्थमय होता जा रहा था। सुमित्रा एक अच्छी, सुंदर,

समझदार और पढ़ी-लिखी लड़की थी। अपने पति को वश में रखने का ढंग वह भली-भाँति जानती थी। अतः अपनी संतान के अभाव को पूरा करने का उपाय, वह अपने भाई का भावना से विवाह मान बैठी और इसके लिए यत्न करने लगी। रत्नलाल तो उसके हाथ में कठपुतली बन रहा था और इस कारण् वे सारी घटनाएँ घटित हुईं, जिनके लिए लाला रघुवीर बंबई आया था।

[3]

रघुवीर चाहता था कि यदि रत्नलाल का कोई लड़का हो जाए तो वह उसको यादव का धर्मपुत्र बनाकर घर की संपत्ति घर से बाहर न जाने दे। इस विचार को मन-ही-मन छिपाकर वह पहले यादव और रत्नलाल में सुलह करा देना चाहता था।

इसके लिए उसने रत्नलाल के कार्यालय में फोन करके यह निश्चय कर लिया कि वह उससे पृथक् में ग्रीन होटल में सायं पाँच बजे मिले। उसने बताया कि वह उससे एक अत्यावश्यक विषय पर बातचीत करना चाहता है।

सायंकाल ग्रीन होटल के रैस्टोराँ में एक मेज पर चाय का ऑर्डर दे, पिता-पुत्र विचार-विनिमय करने लगे। पिता ने कहा, ''रत्न! मैं तुम्हारी चाची और चाचा से बात कर आया हूँ। उनसे जो कुछ सुना है, उससे तो तुम ही अपराधी प्रतीत होते हो।''

''पिताजी! यह तो अपने-अपने दृष्टिकोण की बात है। मैं उन सब कामों को उचित और ठीक मानता हूँ, जिनसे नेक उद्देश्य की सिद्धि हो। मैंने सुंदर के विषय में झूठ बोला था, परंतु उसमें उद्देश्य यह था कि भावना और सुंदर पृथक्-पृथक् रह सकें। दोनों यौवनावस्था प्राप्त कर चुके थे तथा उनमें किसी प्रकार का अनुचित संबंध बन जाना कठिन नहीं था।''

''परंतु रत्नलाल! तुम्हारा उद्देश्य ठीक था अथवा गलत, यह तो दूसरी बात है; लेकिन तुमने एक मच्छर को मारने के लिए बंदूक की गोली

का प्रयोग किया है। सुंदर को घर से निकालने में तुम स्वयं घर से निकल आए। इतना पढ़-लिखकर भी तुम अपना हित समझ नहीं सके। देखो, यदि तुम वहाँ रहते और तुम्हारे घर में अब तक कोई लड़का हो जाता तो मैं यत्न कर उस लड़के को यादव की गोद में दे देता। रही भावना के विवाह की बात, उसका सुंदर से विवाह होता है अथवा मोहन से, इससे तुमको क्या? विवाह किसी के साथ हो, वह अपने भाग की संपत्ति ही तो लेगी।''

''पिताजी! यह बात नहीं है। यह मिल और चाचाजी की पूर्ण संपत्ति उनकी अपनी अर्जित की हुई है। वे वसीयत कर इसको किसी को भी दे सकते हैं। अत: मैं यह चाहता था कि मोहन दामाद बन जाए तो हम चाचाजी को वसीयत में मोहन का नाम भी लिख देने को कहते।''

''परंतु इससे तुमको क्या मिलता?''

''मेरे संतान नहीं हो सकती। मैं सुमित्रा को तलाक नहीं दे सकता। अत: विवाह की बात पक्की हो जाती, तो मैं मोहन को अपना धर्म-पुत्र बना लेता।''

''अर्थात् अपनी बहिन का विवाह अपने लड़के से कर देते?''

''जी नहीं; विवाह पहले हो जाता और पीछे मैं उसको अपने घर में अपना दामाद अर्थात् लड़का बना रख लेता।''

''रत्नलाल! तुम कुछ मूर्ख होते जा रहे हो।''

''कैसे पिताजी?''

''भावना का स्नेह अपने माता-पिता से होता और वह अपने पति को उनके घर में रखती और कदाचित् उन झूठे लांछनों के कारण, जो तुमने उस पर लगाए हैं, वह अपने पति को तुम्हारा शत्रु बना देती।

''मैं तो अब भी कहता हूँ कि अपने चाचा से क्षमा माँग लो। भावना के साथ सहानुभूति का भाव बनाओ और अपनी बीवी को किसी योग्य लेडी डॉक्टर को दिखाकर एक लड़का उत्पन्न कर लो। तब ही चाचा की संपत्ति में एक अंश के तुम स्वामी बन सकोगे।''

''देखिए पिताजी! मैं इस समय एक उच्च श्रेणी का सरकारी

ऑफिसर हूँ। सहस्रों व्यक्ति मेरे अधीन काम करते हैं। यदि मैं चाहूँ तो लाखों रुपए रिश्वत ले सकता हूँ। सहस्रों व्यापारियों से मेरा वास्ता पड़ता है। इस कारण मैं इन सब लोगों के हाव-भाव और रहन-सहन का अनुभव रखते हुए यह समझ सका हूँ कि चाचाजी की संपत्ति का, मुझे कुछ भी भाग नहीं मिल सकेगा।

"हाँ! एक अन्य उपाय मुझको सूझा है। उस पर मैं यत्न कर रहा हूँ। यदि मेरा दाव चल गया तो चाचाजी को कौड़ी-कौड़ी के लिए मोहताज बना दूँगा।"

"क्या करोगे?"

"यह मेरा रहस्य है। समय पर आपको पता चल जाएगा।"

रघुवीर को अपनी झूठ बोलने और यादव को पिटवाने की बात स्मरण हो आई। वह मन में विचार करता था कि क्या इस प्रकार की कोई बात उसका लड़का भी करनेवाला है? पिता के झूठ से उसका छोटा भाई पिता की संपत्ति से वंचित हो गया था। इसके किसी झूठ से उसका चाचा अब मिल के स्वामित्व से वंचित हो जाएगा। वह यह स्मरण कर काँप उठा और चुपचाप अपने पुत्र का मुख देखता रह गया।

रत्नलाल ने अपनी योग्यता का परिचय देते हुए कहा, "पिताजी! मैं इतने बड़े दफ्तर को यों ही नियंत्रण में रखे हुए नहीं हूँ। मुझमें कुछ योग्यता है। मेरा संबंध है, मेरे पास पैसे भी हैं और मैं पहले बीसियों के दिवाले निकलवा चुका हूँ।"

"परंतु रत्नलाल! यह तो कुटिलता है। अपनी पदवी का लाभ उठाकर यह पापकृत्य कर रहे हो।"

रत्नलाल खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने कहा, "जब तक मैं मंत्रिमंडल में अपने हिमायती रखता हूँ, तब तक मुझको किसी बात की चिंता नहीं है। केंद्र के मंत्रिमंडल में यदि मेरे पक्ष में तीन मंत्री न होते तो मैं अब तक बंबई की सड़कों पर मिट्टी छानता होता।"

दोनों चाय पी रहे थे। रघुवीर की समझ में आ रहा था कि घर का

भेदिया ही घर की नींवों पर तैल डाल रहा है। उसने कहा, "देख लो! तुम सज्ञान हो, एक ऊँची पदवी पर पहुँचे हुए हो। कहीं ऐसा न हो कि दूसरों को गिराते-गिराते तुम्हारा अपना ही पाँव फिसल जाए और तुम मिट्टी में मिल जाओ।"

"आप चिंता न करें, पिताजी! सब ठीक होगा। चाचा ने मुझको झूठा, मूर्ख तथा अभिमानी कहा है। मैं इस अपमान का बदला लिए बिना नहीं रहूँगा।"

चाय अभी समाप्त नहीं हुई थी कि रघुवीर ने बैयरे से बिल लाने के लिए कह दिया। रत्नलाल मुख देखता रह गया। उसने विस्मय में पूछ लिया, "और नहीं पिएँगे, पिताजी?"

"बस, मेरा पेट भर गया है।"

"पर मुझे तो अभी पीनी है।"

"तुम्हारे पास चाय के लिए पैसे नहीं हैं क्या? खाओ, पियो, मौज करो। मैं आज रात की गाड़ी से अहमदाबाद के लिए लौट रहा हूँ।"

बैरा टेबल पर से पेस्ट्री की प्लेट उठाकर ले गया। बिल बनवाने के लिए उसका ले जाना आवश्यक था। इस पर रत्नलाल को क्रोध चढ़ आया। वह वहाँ से उठ, जेब से रूमाल निकाल, मुँह पोंछता हुआ होटल से बाहर निकल गया।

रघुवीर होटल का बिल चुका, टैक्सी पर सवार हो अपने भाई के घर जा पहुँचा। उसने अपनी भाभी से कहा, "मैं अभी जा रहा हूँ। मालूम नहीं यादव कब तक आए। मुझको अहमदाबाद में काम है।"

"आप उनसे फोन पर बात कर लीजिए। गाड़ी में तो अभी काफी समय है।"

परंतु रघुवीर ने फोन नहीं किया। वह मन में सोचता था कि अपने साधु प्रकृति के भाई के साथ झूठ बोलना ठीक नहीं होगा। न ही अपने पुत्र की निंदा करनी उचित है। इस कारण बिना बात किए, उसने अपना सूटकेस उठाया और स्टेशन के लिए चल दिया।

यादव आज मिल से जल्दी ही लौट आया था। उसका विचार था कि भाई ने रत्नलाल को बुलवा रखा होगा और उससे बातचीत होगी। वह अपने मन में विचार करता था कि किसी-न-किसी प्रकार उससे सुलह कर लेनी चाहिए। इससे जीवन सरलता से चलने लगेगा। परंतु घर पहुँच उसको पता चला कि उसका भाई स्टेशन चला गया है। इससे उसने अपनी घड़ी में समय देखा। गाड़ी जाने में अभी तीन घंटे शेष थे। इससे उसका माथा ठनका। वह समझ गया कि पिता-पुत्र में कोई बात हुई है, जिससे पिता अपने छोटे भाई का मुख देखना भी पसंद नहीं करता।

राधा ने बताया कि उसने टेलिफोन पर बात करने के लिए कहा था, किंतु वे माने नहीं; इस बात से उनका मुख पीला पड़ गया था और वे बिना बात किए चुपचाप चल दिए थे।

यादव कुछ देर विचार करता रहा। तत्पश्चात् मोटर में बैठ बंबई सेंट्रल स्टेशन पर जा पहुँचा। वहाँ उसने प्रतीक्षालय में अपने भाई को गंभीर विचारों में निमग्न देख, सामने खड़े हो पूछा, ''दादा! नाराज हो गए क्या?''

''नहीं यादव! मैं तुमसे नाराज नहीं हूँ। इस पर भी इतना समझ लो कि जो कुछ मैं एक सरकारी अफसर से सुनकर आया हूँ, उसे हजम करने में बहुत समय लगेगा।''

''किंतु दादा! यह क्या कि बिना किसी प्रकार की सूचना दिए तुम अचानक प्रातःकाल आए और उसी दिन बिना किसी प्रकार की बात किए और सूचना दिए तुम सायंकाल वापस जा रहे हो? क्या सरकारी अफसर का बाप होने से सभ्यता भी लोप हो जाया करती है?''

''नहीं, यह बात नहीं, यादव! कुछ कहने-सुनने को रह नहीं गया। वहाँ बैठने की अपेक्षा यहाँ एकांत में स्थिति का मनन करने के लिए चला आया हूँ।''

''और यहाँ,'' उसने अपने चारों ओर प्रतीक्षालय को यात्रियों से खचाखच भरा हुआ देखकर कहा, ''बहुत एकांत मिला है न आपको?

देखो दादा! यदि लड़ना है तो स्पष्ट बता दो कि मैंने क्या अपराध किया है। मैं सत्य हृदय से कहता हूँ कि मैंने किसी को बुरा चिंतन नहीं किया है।''

''ठीक है, यादव! इस समय मेरा मस्तिष्क काम नहीं कर रहा है। कुछ दिन पश्चात् मैं तुमको पत्र लिखूँगा।''

सेठ यादव ने देखा कि उसका भाई कुछ भी बताना नहीं चाहता। उसने समझा कि पुत्र ने पिता के कान भरे हैं और पिता को भाई से पुत्र अधिक विश्वस्त प्रतीत हुआ है। वह यह भी समझा कि पुत्र ने अवश्य ही, जी भरकर अपने चाचा-चाची और उनकी लड़की की निंदा की होगी।

कुछ समय तक तो वह भाई का मुख देखता रहा, फिर बिना कुछ कहे, प्रतीक्षालय से बाहर निकल गया।

[4]

इसके पश्चात् सेठ यादव ने अपने भाई को पत्र नहीं लिखा और न ही उसके भाई ने अपने मन की बात उसे लिखी।

इतने बड़े घर में शून्यता का आवास हो गया। मणिलाल को छात्रावास में प्रविष्ट करा दिया गया था और वह मास में एक-आध बार ही अपनी बहिन से मिलने आता था। मणिलाल की पढ़ाई और छात्रावास का व्यय सेठ यादव ही वहन करता था। इसके अतिरिक्त उसकी बहिन उसको, अपने पास से कुछ रुपए जेब खर्च के लिए दे दिया करती थी।

घर में पुनः महाराज रसोइए की बन आई थी। अब वही बाजार से वस्तुएँ लाया करता था। इस प्रकार छः वर्ष के पश्चात् पुनः उसके भाग्य का सितारा चमक उठा था।

रत्नलाल बॉम्बे-क्लब का सदस्य था। वहाँ उसका मेल-जोल प्रायः सभी सरकारी अधिकारियों से होता रहता था। बंबई प्रदेश के लेबर ऑफिसर से बातचीत हुई तो उसने रत्नलाल को आश्वासन दिलाया कि अवसर मिलते ही वह औलम्पिक मिल के मालिक को नाकों चने चबवा देगा। इसी समय एक घटना यह घटी कि रत्नलाल का स्थानांतरण देश के

उत्तरी विभाग में हो गया। उसको अब दिल्ली जाना पड़ गया। इस पर भी वह अपने मित्र, लेबर-ऑफिसर को लिखता रहता था।

बहुत प्रतीक्षा के पश्चात् वह अवसर भी आया। रत्नलाल से सेठ यादव का झगड़ा हुए तीन वर्ष और उसको दिल्ली गए दो वर्ष हो चुके थे। इस समय औलम्पिक क्लॉथ मिल में हड़ताल हो गई।

हड़ताल का कारण यह था कि मिल का मैनेजर मोहनदास गांधी गुजराती था। मिल के मालिक गुजराती थे, परंतु अधिकांश कार्य करनेवाले महाराष्ट्रियन थे। भारत सरकार ने बंबई प्रांत के विषय में एक विशेष नीति का अवलंबन किया था। प्रदेश-पुनर्गठन समिति ने तो सौराष्ट्र प्रांत को कुछ बड़ा करने की सम्मति दी थी और बंबई के साथ मध्य भारत का कुछ भाग मिलकर महाराष्ट्र प्रांत के निर्माण का मत दिया था। परंतु भारत की केंद्रीय सरकार को यह स्वीकार नहीं हुआ। बंबई नगर के विषय में झगड़ा आरंभ कर दिया गया। बंबई नगर सौराष्ट्र में जा नहीं सकता था। महाराष्ट्र में जाने से गुजरातियों को, जिनके हाथ में बंबई का प्रायः सारा व्यापार और दस्तकारी थी, आपत्ति थी।

इस कारण बंबई राज्य को बढ़ाकर, इसमें सौराष्ट्र मिला दिया गया। कुछ मध्यभारत के भाग भी इसमें सम्मिलित कर लिए गए और इस प्रकार मराठों और गुजरातियों में लट्ठबाजी चल गई। बंबई में मराठों ने जुलूस निकाले, पुलिस पर पत्थर फेंके और गुजरातियों के पेट में छूरे घोंपने आरंभ कर दिए।

भारत सरकार ने अपनी नीति के समर्थन में युक्ति दी। भारत के प्रधानमंत्री ने वक्तव्य दिए और व्याख्यानों में अपनी नीति का समर्थन किया। महाराष्ट्रियनों और गुजरातियों को उपदेश दिए गए। परंतु दोनों में से कोई भी पक्ष संतुष्ट नहीं हुआ। इस प्रकार एक ओर महागुजरात समिति और दूसरी ओर वृहन्महाराष्ट्र समिति बन गई।

इन दिनों मोहनदास गांधी पर एक महाराष्ट्रियन युवक ने छुरे से आक्रमण कर दिया। उसको पकड़ने का यत्न किया गया, किंतु वह मिल

के कर्मचारी यूनियन के कार्यालय में भाग गया। और जब मोहनदास अपने साथ मिल के कुछ चौकीदारों को लेकर उस युवक को पकड़ने के लिए यूनियन के कार्यालय में पहुँचा, तो यूनियन के मंत्री ने कह दिया कि यहाँ पर इस प्रकार का कोई भी युवक नहीं आया।

विवश मोहनदास ने पुलिस में रिपोर्ट लिखा दी। तुरंत ही इसकी जाँच आरंभ हो गई। मोहनदास के हाथ पर छुरे का गहरा घाव आया था।

हत्या के यत्न का मुकद्दमा बना और यूनियन के मंत्री पर हत्यारे की रक्षा करने का केस बनाया गया। ज्यों ही यूनियन का मंत्री पकड़ा गया, कारखाने के कर्मचारियों ने हड़ताल करने का निश्चय कर लिया।

कारखाने में नब्बे प्रतिशत कर्मचारी महाराष्ट्रियन थे। लेबर ऑफिसर भी महाराष्ट्रियन था, साथ ही वह रत्नलाल का मित्र भी था। उसने यह अवसर देख, अपना एक विश्वस्त कार्यकर्ता कर्मचारियों के पास भेजकर उनको भड़का दिया।

अतः हड़ताल का नोटिस दे दिया गया। मैनेजर ने सेठजी की राय से नोटिस की नकल और उसका उत्तर, जो यूनियन को दिया गया था, सरकारी अधिकारियों के पास भेज दिया। उत्तर में लिख दिया गया था कि यूनियन के मंत्री को पुलिस ने पकड़ा है। मिल का इसके साथ कोई संबंध नहीं है। अतः इस कारण मिल में हड़ताल करना सर्वथा अनियमित होगा।

इस पर भी हड़ताल हो गई। मिल बंद हो गई। जब यह समाचार रत्नलाल को मिला, तो वह अपने कार्यालय से छुट्टी ले बंबई आ गया।

दूसरी ओर यूनियन के मंत्री पर मुकद्दमा चला। हत्या करने का यत्न करनेवाला युवक पकड़ा गया। चौकीदारों ने पहचान लिया और उस पर भी मुकद्दमा चलने लगा।

मुकद्दमा सेशन सुपुर्द हो गया। वहाँ हत्या का यत्न करनेवाले युवक ने कोर्ट से क्षमा माँग ली और बताया कि यूनियन के मंत्री ने ही उसको मोहनदास की हत्या करने की प्रेरणा दी थी।

हत्या का यत्न करनेवाले ने स्वीकार किया कि उसने भूल की है,

उसको क्षमा कर दिया जाए। इस बयान के पश्चात् यूनियन के मंत्री पर दफा बदल गई। पहले तो केवल हत्यारे को छिपाने का दोष था, अब हत्या की प्रेरणा देने का तथा हत्या करने में सहायता देने का अपराध लगाया गया और उसके अनुसार दफा बदल गई।

पहले अपराध में तो अधिकाधिक पाँच वर्ष की कैद का दंड था और इस नए अपराध में आजन्म कारावास का दंड भी हो सकता था।

इससे कर्मचारियों ने, जो तीन मास से हड़ताल पर थे और अब भूखे मरने लगे थे, मिल को आग लगाने की योजना बना ली। यह यत्न पुलिस ने, जो हड़ताल के आरंभ से ही मिल पर नियुक्त थी, विफल कर दिया।

आखिर हड़ताल का विषय, जो सुलह के लिए बोर्ड के पास तीन मास से लटक रहा था, अब सालस-बोर्ड के पास भेज दिया गया। दोनों बोर्डों का चेयरमैन राज्य का लेबर-ऑफिसर था और उसका यह यत्न था कि मिल जितने अधिक-से-अधिक काल तक बंद रह सके, उतना ही उचित होगा।

मिल के वकील सेठ की राय से यह पक्ष ले रहे थे कि हड़ताल अनियमित है। उन्होंने यह नोटिस दे दिया था कि यदि हड़ताली अमुक तिथि तक अपने कार्य पर उपस्थित नहीं होंगे तो वे 'डिसमिस' कर दिए जाएँगे। निश्चित तिथि पर जब कोई कर्मचारी उपस्थित नहीं हुआ तो सबको निकाल दिया गया और उनको कह दिया गया कि वे पुनः प्रार्थना-पत्र देकर कार्य पर आ सकते हैं।

सालस बोर्ड का अध्यक्ष समझता था कि कर्मचारियों का मुकद्दमा ढीला है और इस हड़ताल से वे तबाह हो जाएँगे। इस कारण वह सेठ के वकीलों को डरा-धमकाकर समझौता कराना चाहता था।

कर्मचारियों को तो कठिनाई थी ही। मालिक को भी भारी क्षति हो रही थी। क्लर्क और प्रबंध-विभाग के सेवक हड़ताल पर नहीं थे। वे नित्य आकर कार्यालय में अपनी उपस्थिति लिख जाया करते थे। उनके वेतन का जोड़ भी पंद्रह हजार रुपए मासिक से अधिक हो जाता था। इसके

अतिरिक्त कारखाने का कार्य चालू रखने के लिए एक भारी मात्रा में रुई मोल ले ली गई थी। वह रुई बैंकों के रुपए से मोल ली गई थी। अत: बैंकों के गोदामों में रखी हुई थी और उस पर ब्याज पड़ रहा था। सेठ के घर का खर्चा और मुकद्दमे पर भी धन का व्यय हो रहा था।

पाँच मास तक मिल बंद रहने के पश्चात् सालस बोर्ड ने निर्णय दे दिया, ''मजदूरों ने यह अनियमित हड़ताल धोखे में आकर की है। मालिकों की ओर से केवल यूनियन के पत्र का उत्तर देकर संतोष कर लिया गया था। मालिकों को चाहिए था कि वे प्रचार के लिए विज्ञप्तियाँ छपवाकर अथवा लाउड-स्पीकर से मिल-मजदूरों की बस्तियों में घोषित करवाते और अनपढ़ मजदूरों को समझाते कि हड़ताल अनियमित है।

''अत: यह बोर्ड दोनों पक्षों को इस दुर्भाग्यमय घटना में समान-रूपेण उत्तरदायी मानता है, इस कारण यह निर्णय देता है कि पाँच मास में से तीन मास का वेतन मालिक दें और एक सप्ताह के अंदर मिल को खोल दें।

''इस काल के व्यतीत होने पर भी यदि कोई कर्मचारी उपस्थित न हो तो बोनस इत्यादि देकर उसको छुट्टी दे दी जाए।''

सेठ के वकील इस सालसी फैसले के विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील करने की राय दे रहे थे। सेठ ने बोर्ड के सामने यह कह दिया, ''मेरे साथ न्याय नहीं किया गया, इस कारण मैं इस निर्णय के विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील करूँगा।''

इस पर लेबर ऑफिसर ने कहा, ''पर सेठजी! कारखाना तो खोल दो।''

''मैं उन कर्मचारियों में से एक को भी नहीं रखना चाहता। वे सब अपराधी हैं। मैंने पाँच मास पूर्व ही उनको काम पर से निकाल दिया था और मैं उनके वेतन इत्यादि का उत्तरदायी नहीं हूँ।''

''इससे आपकी भी दिन-प्रतिदिन हानि हो रही है।''

''ठीक है। परंतु यह तो बोर्ड को पहले ही विचार कर लेना चाहिए था। अब जबकि मेरा दिवाला पिट चुका है, इस प्रकार की बातें करने का

कोई लाभ नहीं।''

लेबर ऑफिसर इससे मन में प्रसन्न था। वह देख रहा था कि यदि सालसी बोर्ड का फैसला मान भी लिया जाए तो भी कर्मचारियों को ढाई-तीन मास की हानि होगी। इस कारण उसने यूनियन के नवीन मंत्री को बुलाकर कहा, ''इससे अच्छा निर्णय तुम्हारे पक्ष में नहीं हो सकता। इस कारण रात को सेठजी के मकान पर एकत्रित होकर उनकी मिन्नत-खुशामद कर आगे अपील न होने दो।''

लेबर ऑफिसर के सुझाव के अनुसार ही कार्य किया गया।

सेठ तो मिल खोलने के लिए तैयार था, परंतु वह यूनियन की ओर से आश्वासन चाहता था कि उनकी ओर से किसी प्रकार की अपील नहीं की जाएगी। यूनियन ने यह आश्वासन दे दिया और मिल खोल दी गई।

सब हिसाब लगाने पर विदित हुआ कि मिल को लगभग बीस लाख रुपए की हानि हुई है। सेठजी इसको कड़वा घूँट समझकर पी गए; परंतु वे भविष्य में इस प्रकार की दुर्घटना से बचने का उपाय करने लगे।

वे 'लेबर वेलफेयर ऑफिसर' के पद पर किसी योग्य व्यक्ति को रखना चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे अब अपनी मिल में उत्तर प्रदेश और मद्रास के ही कर्मचारियों को अधिक स्थान दे रहे थे। जब भी कोई स्थान रिक्त होता, वहाँ पर महाराष्ट्र और गुजरात प्रदेश के बाहर का ही व्यक्ति नियुक्त किया जाता।

इस समय मिल की कर्मचारी यूनियनि ने सालस बोर्ड के निर्णय के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील कर दी।

[4]

हाईकोर्ट में अभी मुकद्दमा चल ही रहा था कि सेठजी पूना गए और सुंदर को साथ ले आए। सुंदर ने देखा कि भावना अब एक पूर्ण युवती प्रतीत होने लगी है। उसका सौंदर्य और भी निखर आया है। सेठानी राधा अब बूढ़ी हो गई थी। उसे मधुमेह का रोग लग गया था। वह नित्य ही

'इन्सुलिन' के 'इंजेक्शन' ले रही थी। उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा था।

सेठ साहब भारी आर्थिक हानि होने पर भी और मुकद्दमे की चिंता लगी रहने पर भी, प्रत्यक्ष रूप में वैसे ही दिखाई देते थे जैसे सुंदर के पूना जाने से पूर्व थे।

सुंदर आया तो उसने सेठानी के चरण-स्पर्श किए और हाथ जोड़कर पूछने लगा, "आप तो बहुत ही दुर्बल प्रतीत होती हैं। स्वास्थ्य ठीक नहीं है क्या?"

"सुंदर! अब तो अवस्था बहुत बिगड़ गई है। किसी भी दिन परमात्मा बुला सकता है।"

भावना ने बताया, "माताजी को 'डायबिटीज़' हो गई है और सब प्रकार के उपचार करने पर भी स्वास्थ्य बिगड़ता ही चला जा रहा है।"

सुंदर ने कहा, "माँजी! हमारे यहाँ के लोगों में यह बात विख्यात है कि यह रोग भारत के तीर्थों की पैदल यात्रा करने से निर्मूल हो जाता है।"

"तुमने इस प्रकार किसी को ठीक होते हुए देखा है क्या?"

"नहीं, देखा तो नहीं। इस पर भी यह किंवदंति प्रचलित है।"

राधा ने लालसा-भरी दृष्टि से सेठजी की ओर देखा। सेठजी ने कह दिया, "मुकद्दमा समाप्त हो जाए और सुंदर मेरे स्थान पर कारोबार देखना स्वीकार कर ले तो मैं यह चिकित्सा भी करा सकता हूँ।"

सेठानी ने मुस्कराते हुए सुंदर से पूछा, "बोलो सुंदर! स्वीकार करते हो?"

"सेठजी का काम तो मैं नहीं कर सकता। इस पर भी अन्य कर्मचारियों की सहायता से काम का प्रबंध तो मेरे बिना भी हो जाएगा।"

ये चारों बैठक में बैठे बातें कर रहे थे। सेठ ने गंभीर होकर कहा, "मिल का प्रबंध अब बहुत ही कठिन हो गया है। इस वर्ष बीस लाख की हानि हो चुकी है। इस पर भी यूनियन के अधिकारियों को संतोष नहीं हो रहा है।

"परंतु, सुंदर! तुम मेरी भाँति कुशलता से प्रबंध तो कर ही लोगे इसके अतिरिक्त एक अन्य उत्तरदायित्व मेरे कंधों पर है। वह तो केवल तुम्हारे करने से ही पूर्ण होगा।"

"वह क्या है, सेठजी?"

"बताऊँगा। अभी आज तुम आराम कर लो। कल अपने जिल्दसाज से मिल लो। इसके पश्चात् मैं तुम्हें अपनी योजना बताऊँगा।"

रात हो गई थी। रात को भोजन कर सब सोने के लिए चले गए। सुंदर को पहले तो सीढ़ियों के पास एक बहुत ही छोटा-सा कमरा मिला हुआ था। आज उसको रत्नलाल वाला कमरा दिया गया। उस कमरे के साथ ही पृथक् स्नानागार, शौचालय और पाकशाला थी। सुंदर को जब यह कमरा दिखाने भावना आई तो उसने विस्मय प्रकट करते हुए कहा, "भावना! मेरा वाला पुराना कमरा खाली नहीं है क्या?"

"वह खाली तो है। उसमें आपकी पुस्तकें रखी हुई हैं। किंतु पिताजी की आज्ञा है कि अब आपको यह कमरा दिया जाए।"

"यह उन्होंने अब कहा है क्या?"

"नहीं, यह तो वे जाने से पूर्व ही कहकर गए थे। मैं उनके साथ जानेवाली थी, परंतु वे कहने लगे कि आपको साथ लेकर आएँगे और मैं यह कमरा साफ करवा रखूँ।

"परंतु अब सेठजी मेरे रहने का कमरा देख आए हैं। इससे उनका विचार बदल गया होगा।"

"यदि ऐसा होता तो वे बता देते। यह तो हम सबको समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि आपकी आय अभी साधारण ही है। पिताजी हिसाब लगा रहे थे कि डेढ़ वर्ष में आपकी पुस्तक का प्रथम संस्करण बिका है। आपने दो सहस्र छपवाई थीं अर्थात् बारह हजार की पुस्तकें बिकी हैं और सब प्रकार के खर्चे निकालकर लेखक और प्रकाशक की मिली हुई आय बीस प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती। अर्थात् डेढ़ वर्ष में चौबीस सौ रुपयों के लगभग आय हुई है। दूसरे शब्दों में, सवा सौ रुपए मासिक आय

हुई है। इतनी आय में आपकी अवस्था कैसी है, इसका अनुमान तो जाने के पहले ही पिताजी ने लगा लिया था। तब भी पिताजी ने यह कमरा आपको ठहराने के लिए नियत किया था।

"वे कहते थे कि लेखक परमात्मा का रूप होता है। यह बात दूसरी है कि कोई लेखक सोलह कला परिपूर्ण न हो तो भी उसमें परमात्मा का अंश साधारण व्यक्तियों से अधिक होता है।

"वे अभी-अभी माताजी से कह रहे थे कि हमारे घर में मानो भगवान् आ गए हैं।"

इस समय तक वे कमरे में पहुँच गए थे और भावना ने नौकर को बुलवाकर पलँग के समीप जल से भरा लोटा और गिलास तिपाई पर रखवा दिया। इसके पश्चात् उसने कहा, "अब मैं चलती हूँ। आशा करती हूँ कि पहले की भाँति अब आप चुपचाप भागकर नहीं जाएँगे।"

इस पर दोनों हँस पड़े। भावना ने फिर कहा, "अब आप सदैव यहीं पर रहने के लिए अपने मन को तैयार कर लीजिए।"

"क्यों?"

"अब मैं घर को नीचे से ताला लगवाकर ही सोऊँगी।"

"जेल का दारोगा तो बहुत ही कठोर दिखाई देता है।"

"हाँ, आपका अनुमान ठीक ही है।"

अगले दिन सुंदर अपनी पुस्तकों के पार्सल बनवाकर भिन्न-भिन्न स्थानों के लिए बुक कराता रहा और उस दिन सेठ यादव हाईकोर्ट में व्यस्त रहे। आज दोनों ओर के वकीलों की बहस थी। हाईकोर्ट ने बहस सुनकर निर्णय की तिथि निश्चित कर दी।

अगले दिन सेठजी सुंदर को मिल में ले गए और वहाँ के भिन्न-भिन्न काम बताते रहे। उसी सायंकाल सेठजी ने सुंदर को एकांत में बैठाकर कहा, "मेरा तुमसे निवेदन है कि तुम अब बंबई में ही रह जाओ। मैं मिल में लेबर-वेलफेयर-ऑफिसर का कार्य तुमको दूँगा और मैं समझता हूँ कि तुम श्रमिकों को संतुष्ट रखने में सफल भी हो जाओगे।

"काम बहुत हल्का है। इस कारण शेष समय में तुम अपने पढ़ने-लिखने का कार्य चालू रख सकोगे। छपवाने तथा बेचने का काम किसी अन्य को देना होगा। उस विषय में भी विचार कर लेंगे।

"तुम पहले इतना काम कर लो। फिर तुमसे एक अन्य कार्य कराना है। भावना का हाथ तुम्हारे हाथ में पकड़ाना है। जब यह कर लोगे तो फिर मैं भावना की माँ को लेकर तीर्थ-यात्रा के लिए चल पड़ूँगा। मुझे एक वैद्य ने भी यही बात बताई थी, जो तुमने बताई है।"

"आपकी आज्ञा का मैं पालन करूँगा। इस पर भी मेरा निवेदन है कि आप अभी कुछ दिन के लिए इस विचार को स्थगित कर, मेरे विषय में और अधिक अध्ययन कर लीजिए। मुझ सरीखे अपरिचित जाति, गोत्र के व्यक्ति को इतनी ऊँची पदवी देकर, बाद में कहीं पश्चात्ताप न करना पड़ जाए।"

"यों तो मैंने बहुत विचार कर लिया है। इस पर भी मैं तुमको समय दूँगा, जिससे तुम अपने कार्य करने का अभ्यास कर लो। हाँ, तुमको अब अपने सब ग्राहकों को यहाँ का पता दे देना चाहिए और अपना कार्यालय भी यहीं ले आना चाहिए।"

[6]

रैवरेंड फ्रैंकलिन ने देखा था कि एक गौरवर्णीय युवक प्रायः नित्य मिसेज़ पाल के पास आता है। उसे कुछ संदेह होने लगा कि वह कहीं इस अध्यापिका से घनिष्ठ संबंध न रखता हो। इस संदेह के कारण वह जहाँ स्कूल की अध्यापिका के बदनाम होने से स्कूल की बदनामी से चिंतित हुआ, वहाँ उसे अपने मन की इच्छापूर्ति का मार्ग भी दिखाई देने लगा।

वह एक दिन सायंकाल चाय के समय मिसेज़ पाल के क्वार्टर में जा पहुँचा। मिसेज़ पाल अपनी मेज पर चाय तैयार कर चाय के बर्तन लगा रही थी।

उसने मैनेजर को देखा तो उठकर बाहर आ गई और उनका

अभिवादन कर पूछने लगी, "डॉक्टर! चाय पिएँगे?"

"हाँ। इसीलिए तो आया हूँ। क्या आज वह छोकरा नहीं आया?"

"कौन छोकरा?"

"वह लंबा-लंबा, गोरा-गोरा जो पहले रिक्शा चलाया करता था और अब आवारागर्दी करता है।"

इस समय दोनों भीतर बैठक में पहुँच गए थे। मिसेज़ पाल ने अलमारी में से एक प्याला निकाला और डॉक्टर के सामने रख, उसमें चाय बनाने लगी। डॉक्टर फ्रैंकलिन ने अपनी बात जारी रखी। उसने कहा, "मैं यह समझकर आया था कि वह यहाँ आया होगा और मैं उसको नौकरों से पिटवाकर यहाँ से निकलवा दूँगा।"

"किसलिए डॉक्टर! उसने क्या किया है?"

"उसने तुम्हें 'सिड्यूस' (भ्रष्ट) कर दिया है। उसके तुम्हारे यहाँ आने से स्कूल के बदनाम हो जाने का भय है।"

"यह आपको किसने कहा है? यह बात बिल्कुल गलत है। वह मुझे अपनी माँ मानता है। अल्मोड़ा में मुझसे पढ़ता रहा है।"

"यह तो सब औरतें कहती ही हैं। अपने 'लवर' को भाई, बाप, बेटा बनाती ही रहती हैं। देखो वासंती! उस आवारा लड़के के यहाँ आने से भारी बदनामी हो रही है।"

"वह आवारा नहीं है, डॉक्टर! मैं समझती हूँ कि वह आपसे अधिक पढ़ा-लिखा और योग्य लड़का है।"

"क्या परीक्षा पास की है उसने?"

"तो परीक्षा विद्वत्ता का मापदंड है क्या? उसने कोई परीक्षा पास नहीं की, परंतु वह हक्सले और स्पैंसर पर टिप्पणियाँ लिखता रहता है।"

डॉक्टर हँस पड़ा। हँसकर बोला, "तुम मुझे इस प्रकार ठग नहीं सकतीं। देखो, मेरा एक प्रस्ताव है।"

डॉक्टर ने सामने बनी चाय के प्याले को उठाकर एक चुसकी लगाई और कुछ साहस बाँध कहा, "मैं जब से इस स्कूल का मैनेजर बनकर

आया हूँ, मेरा किसी से संबंध नहीं बना। यदि तुम उस छोकरे से संबंध रखना चाहती हो तो तुम्हें मुझे भी प्रसन्न करना चाहिए। आखिर वह क्या है और तुम्हारे लिए क्या कर सकता है? मैं तो तुम्हारी इतनी तरक्की कर सकता हूँ कि दो वर्ष में ही तुम यहाँ की 'हैड मिस्ट्रेस' बन सकती हो। तब तुम्हारा वेतन पाँच सौ रुपए महीना हो जाएगा और तुम यहाँ की मुख्याध्यापिका होने से सहस्रों की आय कर सकोगी।''

''और यदि मैं आपके प्रस्ताव को अस्वीकार करूँ तो?''

''तो मैं तुम्हारे विरुद्ध 'ऐडल्टरी'[1] का मुकद्दमा बना तुमको न केवल स्कूल में निकलवा दूँगा, वरन् तुम्हें 'ऐक्स-कम्युनिकेट'[2] करवा दूँगा, जिससे तुम न घर की रहोगी और न घाट की।''

''पर आप मुझ पर इतना अन्याय क्यों करेंगे? मैं तो बिल्कुल बेकसूर हूँ। मैं अपने धर्म पर विश्वास रखती हूँ और यही कारण है कि मैं अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी के साथ संबंध बनाना नहीं चाहती।''

''तो वह लड़का तुम्हारा पति नहीं है?''

''नहीं डॉक्टर! वह मेरा विद्यार्थी और बेटे समान है।''

''तुम झूठ बोलती हो।''

''तो मुझ पर 'चार्ज शीट' (आरोप-पत्र) लगाकर मिशन की 'ऐग्जेक्टिव'[3] कमेटी के सामने मेरा मुकद्दमा कर दो।''

''देखो वासंती डीयर! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। मैं तुम्हारी बहुत तरक्की कर सकता हूँ। यदि एक बार मैंने आरोप लगाकर शिकायत भेज दी तो यहाँ की रहनेवाली सब अध्यापिकाएँ मेरे कथन की साक्षी देंगी।''

''इससे मैं चाहता हूँ कि तुम सायंकाल मेरे क्वार्टर पर आ जाना। तुम्हारे लिए बहुत बढ़िया 'डिन्नर' तैयार रहेगा।''

''डॉक्टर! इतनी जल्दी नहीं। मुझे कुछ दिन विचार करने के लिए

---

1. भ्रष्टाचार, 2. जाति-बाह्य 3. प्रबन्ध।

दो। मेरा मन नहीं चाहता कि आपका प्रस्ताव मानूँ, परंतु बात न मानने का जो परिणाम होनेवाला है, वह भी मैं समझ रही हूँ। इस कारण मैं तनिक विचार करना चाहती हूँ।''

इस पर डॉक्टर को यह समझ आया कि वह मान जाएगी। इस कारण उसने पूछ लिया, ''निश्चित तारीख बता दो, जब तुम मुझ पर कृपा करोगी?''

''अभी मैं वचन नहीं देती। हाँ, मैं विचार करने लिए समय चाहती हूँ। मैं आपको चार-पाँच दिन में अपने मन की अवस्था बता सकूँगी। मैं यह सत्य कहती हूँ कि मेरे मन में उस लड़के, सुंदर के लिए, पुत्र की भावना ही है। इस पर भी मैं जानती हूँ कि आप-जैसा बड़ा व्यक्ति कहीं मेरे विरुद्ध हो जाएगा तो मेरी क्या अवस्था हो सकेगी? इससे मेरा यह निवेदन है कि आप मुझे विचार करने का समय दीजिए।''

''अच्छी बात है। आज शनिवार है। आगामी शनिवार को तुम्हें अपने घर 'डिन्नर' पर निमंत्रण देता हूँ। उस समय हम दोनों अकेले ही होंगे। मैं आशा करता हूँ कि तुम मुझे निराश नहीं करोगी।''

इसके उपरांत डॉक्टर अपनी योग्यता और सामर्थ्य की प्रशंसा करता रहा। एक घंटा-भर वह वहाँ बैठ चला गया।

उसके जाने के उपरांत मिसेज़ पाल उठी। उसने अपने चौकीदार को घर का ध्यान रखने के लिए कहा और स्वयं सुंदर से मिलने उसके मकान पर जा पहुँची। वह घर पर नहीं था। दुकान और मकान दोनों बंद थे। उसने एक पड़ोसी से पता किया तो पता चला कि उसका मकान और दुकान बंद पड़े चार दिन से ऊपर हो चुके हैं।

''परंतु,'' उसने पूछा, ''उसने मकान खाली तो नहीं कर दिया?''

''नहीं; दुकान में माल भरा है और उसके घर में उसका सामान रखा है।''

वासंती ने समझा कि वह पुस्तकों की बिक्री करने गया है। अतः वह नित्य ही उसके घर पर आकर उसे देखने लगी।

बुधवार के दिन सुंदर उसे स्वयं मिलने आया। उसे देखकर उसकी जान-में-जान आ गई।

[7]

तीन-चार दिन में अपनी पुस्तकों को भेजने का कार्य समाप्त कर और शेष पुस्तकों का स्टाक अभी पूना न भेजने के लिए कह, सुंदर पूना लौट आया।

पूना पहुँच अपने कार्यालय को समेटते हुए अगले दिन वह अपने बंबई जाने का निर्णय बताने के लिए मिसेज़ पाल के पास गया। मिसेज़ पाल ने पूछा, "कहाँ गए थे, सुंदर? मैं तुम्हारे घर पर गई थी।"

"क्यों मदर! क्या कुछ काम था?"

"हाँ, तुमसे बहुत कुछ विचार करना था। यहाँ एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई है।"

"क्या बात है? नौकरी छोड़ दी है क्या?"

"हाँ, कैसे जाना तुमने?"

"लगभग एक मास हुआ, जब मैं पिछली बार मिलने आया था, तो स्कूल का मैनेजर मिस्टर फ्रैंकलिन जोज़फ यहाँ उपस्थित था। मैंने देखा था कि वह एक विचित्र ढंग से आपकी ओर देख रहा है। मेरा अनुमान था कि वह आपसे प्रेम करने लगा है। आप विवाह तो करेंगी नहीं और इससे आपका उस मैनेजर के अधीन कार्य करना कठिन हो जाएगा।"

"सुंदर! तुमने ठीक समझा है। पहले तो वह मुझे घूर-घूर कर ही देखा करता था। कुछ दिनों से वह मेरा अपमान करने पर तुला हुआ प्रतीत होता है। एक दिन मेरी उससे बात हो गई।

"वह तो मुझ पर बलात्कार करने के लिए आया प्रतीत होता था। फिर न जाने उसके मन में क्या विचार आया कि मुझे तुमसे अनुचित संबंध रखने का आरोप लगाने लगा। अंत में वह बोला कि मैं उससे भी संबंध बना लूँ अन्यथा वह मेरे विरुद्ध आरोप लगाकर मुझे बदनाम कर स्कूल से

निकलवा देगा और फिर 'लार्ड बिशप' को कहकर मुझे धर्मच्युत घोषित करा देगा।

"मैंने उससे एक सप्ताह का समय माँगा है। मैं तो उसी दिन ही यह स्थान छोड़ तुम्हारे साथ रहने के लिए गई थी, परंतु तुम वहाँ थे नहीं। मैं नित्य जाकर पता करती रहती थी।

"ईश्वर का धन्यवाद है कि तुम समय रहते ही आ गए हो अन्यथा तुम्हारे घर का ताला तोड़कर मैं वहाँ घुसकर रहने का विचार कर रही थी। अब तुम आ गए हो और मैं त्याग-पत्र देकर यहाँ से तुरंत चली जाना चाहती हूँ।

"मैं जानती हूँ कि तुम्हारी आर्थिक दशा अभी बहुत अच्छी नहीं है। इस पर भी मैं तुम्हारे कार्यालय में चपरासी का काम तो कर ही सकती हूँ। आशा करती हूँ कि अपने भोजन-भर के दाम का काम कर दिया करूँगी।"

"मदर! मैं परमात्मा पर अगाध विश्वास रखता हूँ। इससे अपनी आत्मा की प्रेरणा का अनुसरण करता हुआ, शेष परमात्मा के अधीन छोड़ देता हूँ। आपको यहाँ से कब छुट्टी होनेवाली है?"

"मैनेजर ने कह दिया है कि जब चाहूँ, यहाँ से जा सकती हूँ।"

"तो ऐसा करिए, कल यहाँ से सामान उठवाकर मेरे घर चली चलिए। शेष वहाँ पर विचार कर लिया जाएगा।"

मिसेज़ पाल विस्मय में सुंदर का मुख देखती रह गई। इस पर सुंदर ने अपने भावी जीवन के कार्यक्रम के विषय में बताते हुए कहा, "मैं बंबई जाकर रहने का निर्णय कर आया हूँ। यह कारोबार भी वहीं ले जा रहा हूँ। मैं तो एक-दो दिन में ही यहाँ से चला जाऊँगा। यदि आप मेरे काम की देख-भाल करेंगी तो कारोबार योग्य वहाँ स्थान मिलते ही आपको भी वहाँ बुला लूँगा। मेरे इस व्यवसाय में जितना प्रकाशन का भाग है, वह आप ले लीजिएगा। यदि इससे भी निर्वाह न हो सका तो बंबई में और भी प्रबंध हो जाएगा।"

''बंबई पूना की अपेक्षा महँगा स्थान है। हम दोनों का निर्वाह वहाँ पर इस व्यवसाय से हो सकेगा क्या?''

इस पर सुंदर ने सेठ यादवजी से अपने संबंध की पूर्ण घटना सुना दी। साथ ही भविष्य में बननेवाले संबंध का वर्णन कर दिया।

मिसेज़ पाल इससे बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने कहा, ''तब तो ठीक है। यह तो हम पर प्रभु की कृपा-दृष्टि का सूचक है।''

इसके पश्चात् अगले दो दिन बंबई जाने की तैयारी में और मिसेज़ पाल को व्यवसाय की कुछ बातें समझाने में व्यतीत हो गए। सुंदर ने मिसेज़ पाल को अपने बैंक का एकाउंट ऑपरेट करने का अधिकार दे दिया। साथ ही उसको ऑर्डर आने पर माल भेजने के विषय में सब समझा दिया।

तीन दिन में वह बंबई जा पहुँचा। मिसेज़ पाल अब उसके घर में जाकर रहने और उसके कारोबार की देख-भाल करने लगी।

बंबई में सुंदर की प्रतीक्षा की जा रही थी। वह स्वयं सेठजी के मकान में रहने लगा और मिल में लेबर-वेलफेयर-ऑफिसर का कार्य सँभालने लगा।

पहले दिन उसने सेठजी को मिसेज़ पाल के विषय में और अपने उससे संबंध के विषय में बताकर, अपना प्रकाशन-कार्य उसके अधीन छोड़ आने की बात बता दी। सुंदर ने बताया, ''वे मुझसे माँ का-सा स्नेह रखती हैं। जब प्रकाशन-विभाग के लिए बंबई में स्थान मिल जाएगा तो वह यहाँ आकर उस व्यवसाय की देख-भाल करेंगी।''

''अच्छी बात है। यदि वे तुम्हारी माँ तुल्य हैं, तो उनके लिए भी इस घर में स्थान बनाना होगा।''

''इस विषय में भी गैं किसी अन्य के अधीन होनेवाला हूँ। मैं समझता हूँ कि उसकी इच्छा ही सर्वोपरि मानी जानी चाहिए।''

''यह तो होगा ही। मैं समझता हूँ कि भावना को इससे सुख ही मिलेगा। यदि वह उसकी सास का स्थान ले सकीं तब इस अभाव की पूर्ति भी हो जाएगी।''

मिल का कार्य इतना सुगम नहीं था, जितना सुंदर समझता था। एक ओर उसको कर्मचारी यूनियन के अधिकारियों से संबंध बनाना था और दूसरी ओर लेबर-विभाग के सरकारी अधिकारियों से। पहले ही दिन कर्मचारी यूनियन के मंत्री से बहुत लंबी-चौड़ी बातें हुईं।

यूनियन के मंत्री का कहना था, "आप हमारे कार्यों में हस्तक्षेप करेंगे तो झगड़ा होगा।"

"क्या काम है आपका?"

"मिल में काम करनेवाले छोटे दर्जे के कर्मचारियों के हितों की रक्षा करना।"

"और ऊँचे दर्जे के कर्मचारियों के हितों की रक्षा करना क्यों नहीं?"

"नहीं, वह हमारा काम नहीं है।"

"क्यों, वे नौकर नहीं हैं क्या?"

"यह बात नहीं। वे इतना वेतन पाते हैं कि उनको रक्षा की आवश्यकता नहीं।"

"क्या वे नौकरी से निकाले नहीं जा सकते?"

"हमारा उनसे संबंध नहीं है। वे अपने विषय में स्वयं सोचकर प्रबंध करने की योग्यता रखते हैं।"

"देखिए! आपकी जो इच्छा हो, करिए। मैं आपको विवश नहीं करता कि आप किसको अपनी संस्था का सदस्य बनाएँ और किसको नहीं। परंतु मैं यहाँ पर काम करनेवाले नौकरों के हितों और उनकी भलाई का ध्यान रखने के लिए नियुक्त हुआ हूँ। इस कारण यदि आप ऊँचे दर्जे के नौकरों को अपनी यूनियन में सम्मिलित करना नहीं चाहते तो मैं उनको अपनी एक पृथक् यूनियन बनाने के लिए कहूँगा। जब उनकी यूनियन बन गई तो उसको भी मान्यता मिलेगी और दोनों यूनियनों का समान अधिकार हो जाएगा।"

इस प्रकार सुंदर ने उसी दिन मैनेजर, इंजीनियर, क्लर्क इत्यादि को

बुलाकर उनकी एक पृथक् यूनियन बनाने का प्रस्ताव कर दिया।

इसी समय हाईकोर्ट का निर्णय भी सुना दिया गया। न्यायाधीशों ने अपने निर्णय में लिखा था, "सालसी बोर्ड के निर्णय को दोनों पक्षों ने मान लिया था, परंतु पीछे यूनियन की ओर से अपील की गई। इस पर मिल के मालिकों की ओर से यह प्रार्थना की गई कि जब सालसी के निर्णय को एक पक्ष नहीं मानता तो दूसरे पक्ष को भी उसके विरुद्ध अपील की स्वीकृति दी जाए। यह माँग सर्वथा युक्ति-युक्त थी। अतः सालसी बोर्ड के पूर्ण निर्णय पर पुनरावलोकन की स्वीकृति दे दी गई।"

दोनों पक्षों के झगड़े के आदि और अंत पर बहस हुई। दोनों पक्षों को सुनकर जजों को सालसी बोर्ड के निर्णय पर विस्मय हुआ। सालसी बोर्ड ने सुलह करानेवाले बोर्ड का काम किया था। किंतु दोनों बोर्डों के कार्य भिन्न-भिन्न थे। जब सुलह करानेवाला बोर्ड सुलह नहीं करा सका तो फिर सालसी बोर्ड का कर्त्तव्य था कि न्याय और कानून के आधार पर निर्णय देता। उसका काम सुलह और लेन-देन की बात करने का नहीं था। सालसी बोर्ड न्यायकर्ता था, सुलहकर्त्ता नहीं। फैसले में यह कहा गया—

"सालसी बोर्ड ने यह माना है कि हड़ताल अनियमित थी। यदि अनियमित थी तो हड़ताल के समय का कुछ भी वेतन दिलवाना अन्यायसंगत है।

"यदि सालसी बोर्ड कर्मचारियों पर दया करने का विचार रखता था, तो उसको यह मामला पुनः सुलह करानेवाले बोर्ड के पास भेज देना चाहिए था। न्यायकर्त्ता दयाकर्त्ता नहीं हो सकता। दया करना राष्ट्रपति का कार्य है, एक न्यायालय का नहीं। लेबर-नियमों में दया और नीति, लाभ और हानि इत्यादि का विचार करने का अधिकार सुलह करानेवाले बोर्ड को है, सालसी बोर्ड को नहीं।

"सालसी बोर्ड का निर्णय कि हड़ताल के तीन मास का वेतन कर्मचारियों का दिया जाए, किसी कानूनी आधार पर नहीं है।

"अतः हमारा यह निर्णय है कि हड़ताल के दिनों का वेतन

कर्मचारियों को, जो काम से अनुपस्थित थे, नहीं दिया जाना चाहिए। जो वेतन सालसी बोर्ड की अवैधानिक आज्ञा से कर्मचारियों को मिला है, उसको वापस पाने के लिए मालिकों को कानूनी कार्यवाही करने का अधिकार है। कर्मचारियों की नौकरी उस दिन से छूट गई समझी जाएगी, जिस दिन मालिकों के, काम पर आने के लिए, नोटिस की तिथि समाप्त होती है।''

यूनियन का मंत्री कह रहा था कि हाईकोर्ट के निर्णय की अपील सुप्रीमकोर्ट के सामने करनी चाहिए। इस पर लेबर-ऑफिसर का कहना था कि उस अवस्था में मालिक किसी प्रकार की भी रियायत करने को तैयार नहीं होंगे।

परिणाम यह हुआ कि पुरानी यूनियन के अधिकांश सदस्य नवीन यूनियन में सम्मिलित हो गए। पुरानी यूनियन में केवल वही लोग रह गए जो कम्युनिस्ट पार्टी के भी सदस्य थे।

इन सब प्रकार की बातों में छः मास लग गए। सुंदर के निरंतर एक दिशा में काम करने का परिणाम यह हुआ कि यूनियन बन गई, जिसमें मैनेजर से लेकर भंगी तक सब सम्मिलित हुए। इसमें कुछ पढ़े-लिखे समझदार और संपन्न व्यक्तियों के आ जाने से यूनियन एक विचारशील संस्था बन गई।

इस अवधि में पारिवारिक परिवर्तन भी हो रहे थे। सेठ यादवजी ने अपनी लड़की भावना का विवाह अपनी मिल के वेलफेयर ऑफिसर सुंदरलाल के साथ कर दिया।

मिसेज़ पाल, जो वासंतीदेवी के नाम से विख्यात थी, सुंदरलाल की माँ समझी जाती थी। वह भी सेठजी के घर में ही रहती थी और फोर्ट एरिया में एक गोदाम लेकर, उसमें प्रकाशन का कार्य करती थी। सुंदर की तो वर्ष में एक-दो पुस्तकें ही तैयार होती थीं, परंतु वासंतीदेवी ने अपने प्रबंध से प्रकाशन-कार्य को बहुत उन्नति दी। छः मास में ही उस विभाग में आठ नई पुस्तकें प्रकाशित हो गई थीं।

जब सुंदर और भावना का विवाह हो गया तो सेठ और सेठानी तीर्थयात्रा के लिए चल पड़े। उनका यह निश्चय था कि वे पाँच-छः मील नित्य पैदल चलकर यात्रा करेंगे। उनका अनुमान था कि देश के सब तीर्थ-स्थानों की यात्रा में तीन वर्ष लग जाएँगे।

एक दिन सुंदर अपनी पत्नी भावना और माँ वासंतीदेवी को अपने बाल्यकाल और बाबा तथा फूफा-फूफी की बातें सुना रहा था। इस पर वासंतीदेवी ने पूछा, ''सुंदर, क्या तुम्हारा अपनी जन्मभूमि और फूफा-फूफी को देखने के लिए मन नहीं करता?''

''माँ! करता तो है, परंतु मैं स्वयं को उस तैरनेवाले की भाँति पाता हूँ, जो नदी की मँझधार में पड़ रहे भँवर में फँस गया हो। मैं भँवर से निकलना चाहता हूँ परंतु भँवर मुझको परिधि से बाहर नहीं निकलने देता।''

इस पर वासंतीदेवी ने कहा, ''मेरी तो इच्छा है कि दो सप्ताह की छुट्टी लेकर यहाँ से चलें। हवाई जहाज से दिल्ली, वहाँ से मोटर में अल्मोड़ा, अल्मोड़ा से घोड़ों पर अपने-अपने गाँवों को। वहाँ एक-एक दिन रहकर दो सप्ताह तक लौट आएँगे।''

वासंतीदेवी के इस कार्यक्रम से तो भावना ने इस यात्रा में विशेष रुचि लेनी प्रारंभ कर दी। उसने अपने पति से कुछ अधिक पूछताछ किए बिना तैयारी कर दी। एक मोटर, ड्राइवर के साथ, पहले ही दिल्ली भेज दी और निश्चित तिथि को, जिसकी सूचना सुंदर को एक सप्ताह पहले दी गई थी, सब लोग प्रातः पाँच बजे के हवाई जहाज से चलकर आठ बजे दिल्ली पहुँच गए। वहाँ प्रातः का अल्पाहार ले, मोटर में, जो उनके लिए एयरोड्रोम पर पहुँची हुई थी, सवार हो, रात वे नैनीताल पहुँच गए। वहाँ आराम कर अगले दिन मध्याह्न तक अल्मोड़ा और वहाँ से घोड़े कर वे लोग कैलाश के मार्ग पर जा पहुँचे।

पहले वासंती का गाँव आया। वहाँ तो वासंती की जान-पहचान का कोई व्यक्ति नहीं था। उसको घर छोड़े पच्चीस वर्ष से ऊपर हो चुके थे।

उसके गाँव में दिन-भर आराम करके वे आगे बढ़े। उसी दिन सायंकाल वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ सुंदर के फूफा की कुटिया को पगडंडी जाती थी।

पगडंडी अभी-अभी बनी थी। उस स्थल पर जहाँ से पगडंडी आरंभ होती थी, अस्त होते सूर्य के प्रकाश में दो व्यक्ति खड़े अल्मोड़ा की ओर देख रहे थे। इनमें एक पुरुष था दूसरी स्त्री।

एक पहाड़ी मोड़ के घुमाव पर वे दोनों खड़े, उसी ओर, जिधर से वे आ रहे थे, देखते दिखाई दिए। सुंदर को इस स्थल की भली-भाँति पहचान थी। वह पहाड़ पर के चिह्नों को पहचानता चला जाता था। उसका विचार था कि पगडंडी को ढूँढने में कष्ट होगा और वह पगडंडी प्रयोग न आने के कारण प्राय: मिट-सी गई होगी।

जब उसने एक स्त्री-पुरुष को वहाँ खड़े देखा तो उसको संदेह हुआ कि कहीं वे उसके फूफा-फूफी न हों। उसने घोड़ा खड़ा कर दिया। इस पर साथ आनेवालों ने भी घोड़े रोक लिए। वे भी पगडंडी के स्थान से आधे फर्लांग के अंतर पर थे।

सुंदर ने ध्यान से देखा तो उसको अपना संदेह ठीक प्रतीत हुआ। पुरुष मैला, फटा, परंतु आई०एन०ए० की वर्दीवाला कोट पहने हुए था।

सुंदर ने वासंतीदेवी से कहा, "माँ! देखो, वे मेरे संबंधी प्रतीत होते हैं। परंतु ये यहाँ क्या कर रहे हैं?"

"ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है।"

"मेरी? यह कैसे हो सकता है?"

सुंदर ने घोड़े को तेज कर दिया। इस पर भावना और वासंतीदेवी ने भी घोड़े तेज कर लिए।

दोनों पहाड़ी इन घोड़ों को आते देख उत्सुकता से इनकी ओर देखने लगे थे। वे समझ रहे थे कि ये कोई यात्री हैं। कदाचित् रात को वहीं डेरा लगाएँगे। वे मन में विचार कर रहे थे कि इनकी वे क्या सेवा कर सकेंगे।

इस समय तक वे घुड़सवार उनके समीप आकर खड़े हो गए। अब

तक सुंदर ने उनको पहचान लिया था। पिछले बारह वर्ष में वे बहुत बूढ़े और दुबले हो चुके थे। दोनों के बाल सर्वथा श्वेत हो गए थे। मुख पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। कपड़े तो फटे-पुराने थे ही।

सुंदर ने घोड़े से उतरते हुए आवाज दी, "बुआ, बुआ, मैं हूँ सुंदर!"

आवाज सुनकर दोनों उसकी ओर लपके। वे उसको पुकारने का यत्न कर रहे थे; परंतु मुख से आवाज नहीं निकल रही थी। सुंदर ने आगे बढ़कर फूफा और बुआ के चरण-स्पर्श किए; परंतु उन्होंने उसको उठाकर गले से लगा लिया।

तीनों बिना कुछ बोले बार-बार गले मिलते थे। उनकी आँखों से सतत आँसू बह रहे थे। इस समय तक वासंती और भावना भी घोड़ों से उतर, समीप खड़ी इस प्रेम-मिलन के दृश्य को देख रही थीं।

सुंदर के फूफा और बुआ वहीं पगडंडी पर बैठ गए और सुंदर को अपने समीप बैठा, प्यार देकर पूछने गए, "तुम कहाँ गए थे, बेटा?"

इस समय सुंदर ने अपनी पत्नी का परिचय कराना उचित समझा। उसने कहा, "बुआ! यह देखो, तुम्हारा बहू है।"

भावना अभी तक खड़ी थी। इस कारण सुंदर की बुआ पुनः खड़ी हो, बहू को समीप बुला, उसके मुख पर देखने लगी। भावना इस निरीक्षण से बचने के लिए झुककर चरण-स्पर्श करने लगी।

सुंदर की बुआ ने उसको उठाकर सिर पर हाथ रखकर प्यार देते हुए कहा, "बेटी! आँखों में आँसू होने से भली प्रकार दिखाई नहीं दे रहा था। इसी से समीप से देखने लगी थी कि सुंदर की बहू कैसी है। सुंदर! बहू तो बहुत सुंदर ले आए हो। कहाँ से लाए हो?"

इसका कुछ उत्तर न देते हुए सुंदर ने कहा, "बुआ! उधर देखो, यह मेरी माँ है।"

"इधर आओ, बहन! तुमको भी देखूँ।" वासंती ने इस पर हाथ जोड़कर प्रणाम कर दिया।

"बुआ! अब नीचे चलें। हम सब घर में ठहरेंगे।"

"आओ बेटा!" सुमेर ने स्वागत करते हुए कहा।

सुमेर ने बताया, "सुंदर! जिस दिन से तुम गए हो, हम तुम्हारे लौट आने की आशा लगाए हुए थे। ये गोरे ईसाई अपने धन और वाक्चातुर्य से ऐसा मोहजाल डालते हैं कि वहाँ फँसा व्यक्ति फिर निकल नहीं सकता। परंतु मेरा विश्वास था कि हमारा सुंदर इतना बुद्धू नहीं होगा। और आखिर भगवान् ने हमारी प्रार्थना सुन ही ली।

"हम नित्य सायंकाल उस मुख्य मार्ग पर जाते थे और कितनी ही देर खड़े हो तुम्हारी प्रतीक्षा किया करते थे। युग बीत गया है बेटा! ऐसा करते हुए। परंतु उस प्रभु को धन्यवाद है कि तुम हमको भूले नहीं। तुम आ गए हो। अब हम प्रभु के घर जाने की सोचेंग। तुम्हारी प्रतीक्षा थी, वह पूर्ण हुई।"

उस रात कोई नहीं सोया। सब सुमेर और उसकी पत्नी की स्नेहमयी वाणी सुनते रहे। सुंदर ने भी अपनी बारह वर्ष की पूर्ण कथा सुना दी।

कुटिया बहुत मजबूत बनी थी। सुमेर ने अपने संसार के ज्ञान से उस कुटिया में कुछ सुधार ही किया था। सबके लिए भूमि पर बिस्तर लगा दिए थे, परंतु किसी को सोने में रुचि नहीं थी।

चाँदनी रात थी। भावना और वासंती कुटिया से बाहर आ, एक पत्थर पर बैठ, चाँदनी के प्रकाश में उस पहाड़ी स्थान की शोभा देखती रहीं।

सूर्य की लालिमा दिखाई देने लगी थी। भीतर तीनों बातें करते-करते चुप हो गए थे। वे बैठे-बैठे ही सो रहे थे। भावना और वासंती भी अब भीतर आईं और कंबल ओढ़ सो गईं।

सुंदर की उत्कट इच्छा थी कि वह अपनी बुआ और फूफा को बंबई ले चले, परंतु वे दोनों जाने के लिए तैयार नहीं हुए। उनका एक ही उत्तर था, "अब हमारा अंतकाल समीप है, बेटा! हमें शांति से यहीं मरने दो।

"तुम जाओ। जब तुम अगली बार यहाँ आओगे, तो तुम्हें यहाँ हमारे स्थान पर हमारे कंकाल ही पड़े मिलेंगे।"

तीन रात वहाँ रहकर बंबई से आई मंडली लौट गई। जाने से पूर्व

कपड़े, कंबल और अन्य सुख-सुविधा का सामान, जो कुछ भी वे रखते थे और उनके काम के थे, दे गई।

जाने से पूर्व सुंदर ने कहा, ''फूफा! मैं एक वर्ष के पश्चात् फिर आऊँगा। तब तक अपने मन को बंबई चलने के लिए तैयार कर रखना। मैं तब आपको साथ ही ले चलूँगा।''

सुमेर ने कहा, ''सुंदर! भगवान् तुम्हारा भला करे। अपने जैसे ही बाल-बच्चों के पिता बन दीर्घ जीवन व्यतीत करो। अब यहाँ न आना। हम नहीं मिलेंगे।''

लौटते समय भावना ने अपना अनुमान बता दिया। उसने कहा, ''ऐसा प्रतीत होता है कि आपके फूफा और बुआ को मैं भली प्रतीत नहीं हुई।''

''नहीं, भावना! कल नदी के किनारे बैठे-बैठे बुआ ने कहा था, 'सुंदर! तुम इतने बड़े आदमी हो गए हो कि हम जंगली, जो न खाने का ढंग जानते हैं न पहिनने का, तुम्हारे साथ जाकर तुमको लज्जित करना नहीं चाहते। तुम जाओ और सुख से अपना जीवन-यापन करो।'

''वे अपने को असभ्य समझते हैं?'' वासंती ने पूछ लिया, ''मैं इसके विपरीत ही समझ रही थी। हम नगर-निवासी धन और भोग-विलास के पीछे भागनेवाले उनसे कहीं अधिक असभ्य हैं।''

''वे निर्धन कहे जा सकते हैं, परंतु असभ्य नहीं।''

''देखो सुंदर! उन्होंने इन तीन दिनों में एक दिन भी नहीं पूछा कि तुम ईसाई हो गए हो अथवा हिंदू ही हो। वे तुमको अपना भतीजा मात्र ही समझते तथा मानते रहे हैं।''

भावना ने बताया, ''आपकी फूफी मुझसे कल कह रही थीं, 'बेटी! सुंदर को प्रसन्न रखना। हम तो इस देख-भाल का प्रतिकार तुमको दे नही सकेंगे, परंतु भगवान् तुमको उसकी सेवा का फल देगा।''

अल्मोड़ा पहुँचते वासंती ने कहा, ''सुंदर! हम वापस तो चल रहे हैं, परंतु मेरे मन में शांति नहीं हो रही।''

"किसलिए? क्या यहाँ से जाने का चित्त नहीं करता?"

"हाँ। मुझे यह स्थान देख अपना बाल्यकाल स्मरण हो आया है। यद्यपि उस समय पिता के घर में इतनी सुख-सुविधा नहीं थी, जितनी अब बंबई में है। परंतु यहाँ का वातावरण, ये पहाड़ और यहाँ का सब-कुछ ऐसा जाना-बूझा प्रतीत होता है कि इनको छोड़ने का चित्त नहीं करता।"

सुंदर हँस पड़ा और बोला, "मदर! तुम यहीं रह जाओ। मेरे फूफा के पास रहना चाहो तो तुमको यहाँ मकान बनवाकर दे सकता हूँ। साथ ही खाने-पीने का प्रबंध कर सकता हूँ। जब यहाँ रहते-रहते मन ऊब जाए जो पत्र भेज देना। मैं आकर तुमको ले जाऊँगा।"

"बात तो ठीक है। वे वृद्धजन भी इसमें सुख अनुभव करेंगे।"

इस पर भावना ने कह दिया, "पर मदर! मैं तो कुछ और ही विचार कर रही हूँ।"

"क्या?"

"मैं समझ रही हूँ कि हम कितने स्वार्थी जीव हैं कि इतनी दूर से आकर भी इनको साथ नहीं ले जा रहे?"

"देखिए," अब भावना ने सुंदर की ओर मुख कर कहा, "बारह वर्ष से ऊपर हो गए हैं आपको घर छोड़े हुए। विचार कीजिए कि बारह वर्ष से वे नित्य पगडंडी से सड़क तक आकर आपकी राह देखते रहे हैं और आप आए और तीन दिन तक रहकर चल दिए।"

"पर हमने उन्हें कहा तो था कि वे हमारे साथ बंबई चले चलें। उन्होंने स्वयं ही वहाँ जाने से इन्कार किया है।"

भावना की आँखें तरल हो रही थीं। उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि हमने भली-भाँति नहीं कहा। हमारे अपने मन में ही चोर प्रतीत होता था कि वे असभ्य हैं और हम उनसे संपर्क रख असभ्य माने जाएँगे। मेरा तो चित्त करता है कि कल फिर लौट वहाँ पहुँच जाएँ और फिर उनको साथ लेकर ही चलें।"

"और यदि वे न मानें तो?" सुंदर का प्रश्न था।

"कैसे नहीं मानेंगे? मैं वहाँ धरना दे दूँगी और कह दूँगी कि यदि वे नहीं चलते तो मैं उनके द्वार पर अनशन कर प्राण त्याग दूँगी।"

सुंदर गंभीर विचार में मग्न हो गया। उसे मौन देख वासंती ने कह दिया, "बेटा सुंदर! अब तो देर हो गई है। कल फिर वहाँ चलना चाहिए। उनके लिए पालकी का प्रबंध करके ले चलना चाहिए।"

यह निश्चय हो गया। सुंदर इत्यादि अल्मोड़ा में 'पाइन व्यू' होटल में ठहरे हुए थे। उन्होंने बैयरा को कहकर दो डाँडियों का प्रबंध कर बहुत प्रातः उस सड़क पर भेज दिया जो वहाँ से कैलाश को जाती थी। उनका अनुमान था कि डाँडीवाले सायंकाल तक वहाँ पहुँच जाएँगे। वे स्वयं घोड़ों पर प्रातः का अल्पाहार ले चल पड़े।

वे लोग सायं चार बजे तक उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ चार दिन पूर्व उन्होंने वृद्ध और वृद्धा को दक्षिण की ओर मुख किए खड़े देखा था।

आज वहाँ कोई नहीं था। सुंदर और दोनों औरतों ने घोड़ों से उतर उनकी लगामें पकड़ लीं और पगडंडी से नीचे उतरना आरंभ कर दिया।

वे विस्मय कर रहे थे कि झोंपड़ा सुनसान क्यों प्रतीत होता है।

सुंदर झोंपड़ी के बाहर पहुँच उत्सुकता से बुआ को पुकारने लगा। जब भीतर से कोई उत्तर नहीं आया तो वह भीतर घुस गया। भीतर जा वहाँ की अवस्था देख वह स्तब्ध रह गया। उसने भावना को आवाज दे दी, "भावना! भावना!! भीतर आ जाओ।"

दोनों औरतें भीतर गईं तो उन्होंने देखा कि वे वृद्ध और वृद्धा चटाई पर एक-दूसरे के गले में बाँहें डाले पड़े हैं। इस प्रकार लेटे-लेटे ही दोनों के प्राणांत हो गए हैं।

दोनों शवों के मुख पर संतोष की मुद्रा प्रतीत हाती थी। उनको देखकर यही कहा जा सकता था कि दोनों किसी अति शुभ कर्म को सम्पन्न कर आराम से सो रहे हैं।

●●●





श्री गुरुदत्त

(1894 - 1989)

शिक्षा : एम. एस-सी.

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रूके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद्, दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता।



प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सदन

वितरक :-

एन॰डी॰सहगल एण्ड सन्स

18/23, शक्ति नगर, दिल्ली 110007

A.H.W.
ASHOK SERIES